हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ५८ वाँ ग्रन्थ।

चन्द्रनाथ।

बंगालके अद्वितीय उपन्यासलेखक

श्रीशरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायके

अतिशय मर्मस्पर्शी सामाजिक उपन्यासका अनुवाद।

अनुवादकर्ता—

श्रीयुत बाबू रामचंद्र वर्मा।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

वि० सं० १९८२।

प्रथमबार।] [मूल्य बारह आने।

सजिल्दका मूल्य सवा रुपया।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
मालिक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव—बम्बई।

मुद्रक—
मंगेशराव कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ठाकुरद्वार—बम्बई।

भूमिका ।

बंगालके स्वनामधन्य लेखक श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायका 'चन्द्रनाथ' पाठकोंके सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है। इस समय बंगालमें शरत् बाबूके उपन्यासोंकी धूम है। यूरोपके नामीसे नामी उपन्यासलेखकोंके साथ उनकी तुलना की जाती है। उनके कुछ उपन्यासोंके अँगरेजी अनुवाद भी हो चुके हैं। भारतीय लेखकोंमें रवीन्द्र बाबूके बाद उन्हींका नाम लिया जाता है।

हिन्दू—विशेष करके बंगाली हिन्दू—समाज और गार्हस्थ्य जीवनके जो चित्र उनकी कलमसे निकले हैं वे बड़े ही मर्मस्पर्शी, भावपूर्ण और सजीव हैं। उनके ये चित्र सामाजिक विचारोंमें, बिना किसी आन्दोलनके, चुपचाप, एक बड़ी भारी क्रान्ति उत्पन्न कर रहे हैं और कट्टरसे कट्टर लोगोंको अपने हृदय टटोलनेके लिए बाध्य कर रहे हैं। शरत् बाबूके उपन्यासोंके विषयमें समालोचनायें भी खूब लिखी गई हैं। बड़े बड़े साहित्यसेवियोंने उन्हें इस युगका महान् लेखक माना है। इनकी रचनामें कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो इनके पहलेके लेखकोंमें नहीं थी। एक सुप्रसिद्ध समालोचक लिखते हैं –"हमारे गृह और समाजजीवनमें स्नेह और प्रेम अपने स्वाभाविक आधारसे वञ्चित, उत्क्षिप्त और विधि-निषेधोंके द्वारा अविन्यस्त होकर जिस गभीर वेदना, ग्लानि और लज्जाकी सृष्टि कर रहा है, शरत् बाबू उसी क्षुब्ध, व्यथित और व्यर्थ प्रेमकी वेदनाके पुरोहित हैं। उनकी मर्मस्पर्शी रचनाके स्थान स्थानसे यह गभीर वेदना घुमड़ घुमड़ कर बाहर निकलती हुई जान पड़ती है। प्रभावशालिनी और जोश दिलानेवाली बात कहनेमें वे बंगला उपन्यासकारोंमें अद्वितीय हैं। सामाजिक और गार्हस्थ्य विधि-विधानोंके कारण यह क्षुब्ध और उत्क्षिप्त प्रेमकी विह्वलता हमारे घरों और समाजमें कैसी कैसी करुण घटनाओंके द्वारा प्रकाशित होती है इसे शरत् बाबूने बहुत ही व्यापक रूपसे स्पष्ट किया है और यही उनकी विशेषता है।"

"ऐसा नहीं है कि जीवनमें थोड़ासा दुःख भोग लेनेके बाद सुख निश्चयसे मिल ही जायगा। जीवनको फूलों फलोंसे सार्थक करना आवश्यक है और इसका केवल एक ही उपाय है—त्याग। यह त्याग ही एक मात्र सत्य है–गृहधर्म, समाजधर्म और न्यायधर्म इस त्यागके सामने सर्वथा तुच्छ और क्षुद्र हैं। जिसके भीतर सचमुच ही इस त्यागकी शिखा जलती है उसे वंशपरम्परागत साधारण

विधिनिषेधके गजसे मापना कदाचित उचित नहीं है। बस, यही उनके उपन्यास साहित्यका बिल्कुल modern note है, और यहीं पर उन्होंने हिन्दूसमाजको संकीर्ण विधिनिषेधप्रवर्तित हीनताओं और दुर्बलताओंमेंसे उदारता और विशालताकी ओर आह्वान किया है।"

"शरत् बाबू कहते हैं कि नर और नारी यदि अपने जीवनके त्याग और दुःखके भीतर होकर परस्परके सम्बन्धको सार्थक कर सकें तो फिर उन पर किसी भी अनुल्लघनीय विधि-निषेधका दावा नहीं चल सकता। यह अवश्य है कि इस प्रकार त्याग और दु खको सभी लोग स्वीकार नहीं कर सकते हैं। यह असाधारण है, किन्तु जिस स्थानमें इसका प्रभाव देखा जाता है, वहाँ समाजकी विधिको उसके आगे तुच्छ मानना ही होगा। उनके उपन्यास साहित्यका यही सबसे प्रधान तत्त्व है।"

"बगालके स्वाभाविक गृह और समाज-जीवनमें विधि-निषेधकी संकीर्ण परिधिके भीतर हम साधारणत जिस पूर्णस्नेह और प्रेमकी छवि देखते हैं और जिसे हमारे अन्य सब उपन्यास लेखकोंने चित्रित किया है, शरत्बाबूके मतसे प्रेम उस प्रकारके स्वाभाविक और सहज क्षेत्रमें प्रकाशित नहीं होता है। शरत्-बाबूकी रचनामें विधि-निषेधके द्वारा विपर्यस्त और असमाप्त प्रेमकी गभीर हाहाकार ध्वनि हमे बराबर सुनाई देती है। उन्होंने मानों गृह, समाज और जगत्को एक अद्भुत दृष्टिसे देखकर अपनी और हमारी अन्त पीडाका निगूढ रहस्य प्रकाशित कर दिया है।"

"आर्ट (कला) के जिन सब उपादानोंने शरत्बाबूके उपन्यासोंको इतना आकर्षक बना दिया है, उनमें उनकी तीव्र अनुभूति ही सर्वप्रधान है।"

"साहित्यजगतमें जिन दो चार लेखकोंने, केवल कल्पनाके प्रभावसे नहीं किन्तु गभीर और सजीव अनुभूतिके द्वारा जीवनके दु खों और निष्फलताओंके निगूढ रहस्यका परिचय देनेका वास्तविक अधिकार पाया है, उनमें शरत्बाबू प्रधान हैं।"

उपर्युक्त उद्धरणोंसे पाठक शरत्बाबूकी विशेषताओंका बहुत कुछ परिचय पा जायँगे और यद्यपि उक्त उद्धरणोंमें जो बातें कहीं गई हैं वे उनके सारे उपन्यासोंको लक्ष्य करके लिखी गई हैं, फिर भी 'चन्द्रनाथ' में भी पाठक देखेंगे कि उनकी उक्त सब विशेषतायें न्यूनाधिक रूपमें मौजूद

है। सरयू सर्वथा निर्दोष है, उसका चरित्र चाँदनीके समान निर्मल और पवित्र है। वह चन्द्रनाथको जी जानसे चाहती और प्यार करती है। चन्द्रनाथ भी उसे हृदयसे चाहता है, फिर भी सरयू घरसे निकाल दी जाती है। अपनी माताके एक दोषके कारण उस निरपराधाको, सामाजिक विधिविधानोंके कारण अशेष वेदनायें और लांच्छनायें सहन करनी पड़ती हैं। लज्जा और ग्लानिके कारण वह अधमरी हो जाती है। चन्द्रनाथ भी नहीं चाहता है कि मैं सरयूको छोड़ दूँ, परन्तु समाजका भय उसे लाचार कर देता है और सरयूको विष खालेने तककी सम्मति दे देता है! सरयू पहले तो विष खानेके लिए राजी हो जाती है, परन्तु फिर अपने गर्भके बच्चेकी रक्षाके खयालसे नहीं खाती और अपने प्राणधनको छोड़ कर चली जाती है। इस हृदयवेधक व्यापारको शरत् बाबूने ऐसे ढँगसे प्रकाशित किया है कि पाठकोंकी सहानुभूति सरयूकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहती। सरयू और चन्द्रनाथके इस क्षुब्ध और उत्क्षिप्त प्रेमकी विह्वलता पढ़नेवालोंके हृदयको हिला देती है।

सरयूके त्याग और दुःखने उसे गृहधर्म और समाजधर्मसे बहुत ऊपर उठा दिया है और इस कारण समाजके विधि-निषेध उसके आगे तुच्छ हो गये हैं, अपनी सती महिमासे मण्डित होकर उसने अपने खोये हुए पतिको फिर पा लिया है।

इस तरह शरत्बाबू अपने इस चन्द्रनाथमें भी क्षुब्ध और व्यथित प्रेमवेदनाके पुरोहित हैं, त्याग और दु खकी महिमाके आगे सामाजिक विधिविधानोंको तुच्छ समझानेवाले हैं और हिन्दूसमाजको सकीर्ण हीनता और दुर्बलतामेंसे उदारता और विशालताकी ओर ले जानेवाले हैं। उनकी तीव्र अनुभूति भी इसमें जगह जगह प्रकाशमान हो रही है।

आशा है कि हिन्दीके पाठक इसे आदरकी दृष्टिसे देखेंगे और हमें शरत्-बाबूके अन्यान्य उपन्यासोंको प्रकाशित करनेके लिए उत्साहित करेंगे।

—नाथूराम प्रेमी।

हिन्दीग्रन्थरत्नाकर का० द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची।

(विषयोंके अनुसार।)

नाटक।

(द्विजेन्द्रलाल राय कृत)

दुर्गादास (ऐतिहासिक)	१)
मेवाड़-पतन ,,	।॥=)
शाहजहाँ ,,	१)
ताराबाई (पद्य) ,,	१॥)
नूरजहाँ ,,	१=)
सुहराब-रुस्तम ,,	॥=)
चन्द्रगुप्त ,,	१)
सिंहल-विजय ,	१=)
राणा प्रतापसिंह ,,	१॥)
सीता (पौराणिक)	॥-)
पाषाणी ,,	॥।)
भीष्म ,,	१।)
उस पार (सामाजिक)	१=)
भारतरमणी ,,	॥।=)
प्रायश्चित्त (मेटरलिंककृत)	।)
सूमके घर धूम (प्रहसन)	।)
अजना (पौराणिक) सुदर्शनकृत	१=)
मुक्तधारा (रवि बाबू)	॥।)

उपन्यास।

प्रतिभा (सामाजिक)	१।)
आँखकी किरकिरी ,,(रविबाबू)	१॥=)
अन्नपूर्णाका मदिर ,,	१)
सुखदास (जार्ज इलियटकृत)	॥=
चन्द्रनाथ (शरत् बाबू)	॥।)

गल्पगुच्छ और गल्प

फूलोंका गुच्छा	॥-)
नवनिधि (प्रेमचन्द)	॥।)
कनकरेखा	॥।)
पुष्पलता (सुदर्शन)	१)
श्रमण नारद (बौद्धकहानी)	=)
भाग्यचक्र	-)॥
सदाचारी बालक (मीर)	=)॥
दियातले अँधेरा	=)

काव्य।

बूढ़ेका ब्याह (मीर)	=)॥
देवदूत (प० रामचरित)	।=)
देवसभा ,,	।-)

साहित्य और समालोचना

कालिदास और भवभूति (द्विजेन्द्रलालरायकृत)	१॥)
साहित्यमीमांसा	१।=)
प्राचीन साहित्य (रविबाबू)	॥-)
अरबी-काव्य-दर्शन	१।)

जीवनचरित।

आत्मोद्धार (बुकर टी. वाशिंगटन)	१)
अब्राहमलिंकन	।॥=)
कोलम्बस	॥।)
महादजी सिन्धिया	॥।=)
कावूर (मेजिनीका साथी)	१)
जानस्टुअर्ट मिल	॥=)

चन्द्रनाथ ।

पहला परिच्छेद ।

जिस दिन चन्द्रनाथके पिताका श्राद्ध था, उससे ठीक एक दिन पहले किसी बात पर चचा मणिशंकर मुखोपाध्यायसे उनका कुछ मनमुटाव हो गया। उसका फल यह हुआ कि दूसरे दिन मणिशंकरने उनके यहाँ आकर अपने बड़े भाईके श्राद्धके सब काम तो अच्छी तरह कर दिए, पर आप वहाँ अनाजका एक दाना भी मुँहमें न डाला और न अपने घरके लोगोंको ही वहाँ कुछ भोजन करने दिया। ब्राह्मण-भोजन हो चुकने पर चन्द्रनाथने हाथ जोड़कर कहा—चाचाजी, यदि मुझसे कोई भूल हुई हो, कोई अपराध हुआ हो, तो आप मेरे पिताके तुल्य हैं, मै आपके पुत्रके समान हूँ, इस बार आप मुझे क्षमा करें।

पितृतुल्य मणिशकरने उत्तरमें कहा—भाई, तुम लोग कलकत्तेमें रहकर बी० ए०, एम० ए० पास करके विद्वान् हुए हो, बुद्धिमान् हुए हो और हम लोग पुराने जमानेके मूर्ख ठहरे। हमारे साथ तुम्हारी पटरी नहीं बैठेगी। देखो न, इसीको शास्त्रकार लोग कह गए हैं कि "जड़ काटकर डालियोंको सींचना।"

यद्यपि इस शास्त्रोक्त वचनके साथ आधुनिक पण्डित और पुराने जमानेके मूर्खका कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं था, तथापि मणिशकरने अपने मनका जो भाव प्रकट किया था, उसे समझकर चन्द्रनाथने मन ही मन इस बातकी प्रतिज्ञा कर ली थी कि अब मै अपने चचाके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध न रक्खूँगा। और फिर उनके पिताके जीवनकालमे भी इन दोनो सगे भाइयोमें कोई विशेष प्रेम-प्रीति नहीं थी। पर हॉ, खान पान और लेन देनका सम्बन्ध अवश्य था। पर अब वह भी बन्द हो गया। चन्द्रनाथके पिता यथेष्ट धन-सम्पत्ति छोड़ गए थे। पर घरमे कोई अपना या आत्मीय नहीं था। चन्द्रनाथके केवल एक मामा थे जिनको कोई सन्तान नहीं थी, और दूसरी उनकी मामी थी।

जब सारा घर सुनसान जान पडने लगा, तब चन्द्रनाथने अपने गुमाश्तेको बुलाकर कहा—मै कुछ दिनोंके लिए विदेश जाऊँगा। आप घर-बारका सारा काम काज जिस प्रकार पहले देखते थे, उसी प्रकार अब भी देखा करे। मै समझता हूँ कि मेरे लौटनेमे विलम्ब होगा।

चन्द्रनाथके मामा व्रजकिशोरने इस पर आपत्ति प्रकट करते हुए कहा—नहीं, अभी तुम्हारे कहीं बाहर जानेकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा चित्त अभी बहुत दु.खी है, इसलिए अभी तुम्हे घर ही रहना उचित है।

पर चन्द्रनाथने उनकी इस बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्होने अपनी सम्पत्तिका सारा भार गुमाश्ता पर छोड दिया। जिस मकानमें वे रहते थे, उसकी व्यवस्था व्रजकिशोरके सुपुर्द कर दी और बहुत ही सामान्य भावसे वे विदेश चल पडे। जब वे जाने लगे, तब उनके साथ एक नौकर भी न जाने पाया।

व्रजकिशोरको एकान्तमें बुलाकर उनकी स्त्री हरकालीने कहा—तुमने एक काम भी न कर लिया ?

व्रजकिशोरने पूछा—कौनसा काम ?

हर०—जब चन्द्रनाथ विदेश जाने लगा था, तब तुमने उससे कुछ लिखा पढा क्यों नहीं लिया ? कौन कह सकता है कि आदमीको कब क्या हो जाय ! यदि विदेशमें अचानक कोई भली-बुरी बात हो जाय, तो तुम कहाँ जाकर रहोगे ?

व्रजकिशोरने कानोपर हाथ रखकर और दाँतसे जीभ काटकर कहा—छी छी , ऐसी बात कभी मुँहसे न निकालना ।

हरकाली बिगड़ गई । बोली—तुम मूर्ख हो, इसी लिए मुझे ऐसी बात मुँहसे निकालनी पड़ी है । यदि तुम समझदार होते, तो मुझे ऐसी बात न कहनी पडती ।

पर दो चार दिनमें ही व्रजकिशोरको उनकी स्त्रीकी कृपासे यह माल्रूम हो गया कि उसने जो कुछ कहा था, वह ठीक था। उस समय वे पछताने लगे ।

साल भर तक चन्द्रनाथ भिन्न भिन्न स्थानोंमें अकेले घूमते फिरे । इसके उपरान्त उन्होंने गया पहुँचकर अपने स्वर्गीय पिताका वार्षिक श्राद्ध किया । पर अब भी उनकी घर लौट चलनेकी इच्छा नहीं हुई । उन्होने सोचा कि पहले कुछ दिन चलकर काशीमे रहे । फिर जो होगा, वह देखा जायगा । काशीमें मुखोपाध्याय वशके पण्डा हरिदयाल घोषाल थे । चन्द्रनाथ एक दिन दोपहरके समय हाथमे कैन्वसका एक बेग लिए हुए उनके घर पर जा पहुँचे । काशी चन्द्रनाथके लिए कोई नई जगह नहीं थी । इससे पहले कई बार वे अपने पिताके साथ यहाँ आए थे । हरिदयाल भी उन्हे बहुत अच्छी तरह जानते थे ।

उनके अचानक इस प्रकार आ पहुँचनेसे वे कुछ विस्मित हुए। चन्द्रनाथके लिए ऊपरके खण्डमें एक कमरा निश्चित हो गया और साथ ही यह भी निश्चित हो गया कि वे जब तक चाहे, तब तक वहीं रहें।

इस कमरेमें अन्दरकी ओर एक जँगला लगा था जिसमेंसे रसोईघरका कुछ अंश दिखाई देता था। चन्द्रनाथ प्रायः बड़े चावसे बहुत देर तक उसी ओर देखा करते थे। यह बात नहीं है कि उनकी दृष्टि रसोईकी सामग्री पर रहती थी, बल्कि रसोई बनानेवालीको देखना उन्हें बहुत भला जान पड़ता था।

वह विधवा सुन्दरी थी, पर उसका मुख मानों दुःखकी अग्निसे जला हुआ था। यौवन है या चला गया, इसका भी कुछ पता नहीं लगता था। वह आकर चुपचाप अपना काम कर जाती थी। उसके साथ दस वर्षकी एक बालिका रहती थी जो रसोईका सामान इकट्ठा करनेमें सहायता दिया करती थी। चन्द्रनाथ अतृप्त नेत्रोंसे उसीको देखा करते थे।

पहले कुछ दिनों तक तो वह विधवा चन्द्रनाथके सामने नहीं आती थी। भोजन परोसकर रख दिया करती थी और आप हट जाती थी। पर फिर धीरे धीरे वह उनके सामने आने लगी। एक तो चन्द्रनाथ अवस्थामें उससे छोटे थे, तिस पर अधिक दिनों तक एक ही स्थानमें साथ रहनेसे कुछ आत्मीय भाव भी आ जाता है; इस लिए अब वह चन्द्रनाथको भोजन करानेके लिए पास आ बैठती थी और माताके समान यत्नपूर्वक उन्हें भोजन कराती थी।

चन्द्रनाथको अपनी माताकी बातें स्मरण नहीं थीं। बहुत दिनोंसे उनके पिता ही उनका लालन पालन करते आए थे। इसमें सन्देह नहीं कि उनके पिताने उस स्थानकी बहुत कुछ पूर्ति कर रक्खी थी, परन्तु उनका स्नेह इतना कोमल नहीं था।

पिताकी मृत्युसे चन्द्रनाथके कलेजेमें जो अंश खाली हो गया था, अब केवल वही नहीं भरने लगा था, बल्कि अब वे नवीन मातृ-स्नेहके रसमें एक प्रकारसे डूबने लगे थे ।

एक दिन चन्द्रनाथने हरिदयालसे पूछा—यह तो मै पहलेसे ही जानता हूँ कि आपका अपना कोई सम्बन्धी या रिश्तेदार नहीं है; परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह कौन है ।

हरिदयालने कहा—यह ब्राह्मणी है ।

चन्द्र०—आपकी कोई रिश्तेदार है ?

हरि०—कोई नहीं ।

चन्द्र०—तो फिर यह आपको कहाँ मिल गई ?

हरि०—इसकी बहुत लम्बी कहानी है । पर सक्षेपमें बात यह है कि कोई तीन वर्ष हुए, वह अपने स्वामी और उस लड़कीको लेकर तीर्थयात्रा करनेके लिए यहाँ आई थी । काशीमें ही उसके स्वामीकी मृत्यु हो गई । देशमें उसका कोई अपना सगा-सम्बन्धी नहीं था, जिसके पास वह चली जाती । फिर उसके उपरान्त जो कुछ हुआ, वह तो तुम देख ही रहे हो ।

चन्द्र०—आपने उसे पाया किस प्रकार था ?

हरि०—वह मणिकर्णिका घाटके पास भिक्षा माँगती फिरती थी ।

चन्द्रनाथने थोड़ी देर तक कुछ सोचकर पूछा—क्या आपको माळूम है कि उसका घर कहाँ है ?

हरि०—मैं ठीक तो नहीं जानता, पर हाँ, इतना माळूम है कि वह नवद्वीपके पासके किसी गाँवकी रहनेवाली है ।

दूसरा परिच्छेद ।

इसके दो चार दिन बाद भोजन करते समय चन्द्रनाथने उस ब्राह्मणीके मुखकी ओर देखकर पूछा—आप कौन ब्राह्मण है ?

ब्राह्मणीके चेहरेका रग कुछ फीका पड़ गया। वह समझ गई कि यह प्रश्न किस लिए किया गया है। वह इस प्रकार चटपट उठ खड़ी हुई कि मानो उसने कुछ सुना ही नहीं और बोली—जाऊँ, दूध ले आऊँ।

दूध लानेकी कोई ऐसी जल्दी नहीं थी। कुछ सोचनेके लिए ही वह रसोईघरमे आई थी। वहाँ उसकी कन्या सरयू दूध उँडेल रही थी। अपनी माताके उतरे हुए चेहरेकी ओर उसका ध्यान नहीं गया। माताने एक बार अपनी कन्याके मुखकी ओर देखा और दूधका कटोरा हाथमे लेकर एक बार लम्बी साँस खींचते हुए मन ही मन कहा—हे दीन दुखियोके प्रतिपालक, हे अन्तर्यामी, तुम मुझे क्षमा करना। इसके उपरान्त उसने दूधका कटोरा लाकर चन्द्रनाथके सामने रख दिया और उनके पास बैठ गई। चन्द्रनाथने फिर वही प्रश्न किया।

जब चन्द्रनाथने एक एक करके सब बातें जान लीं, तब अन्तमे पूछा—आप अपने घर क्यो नहीं चली गई ? क्या वहाँ आपका कोई अपना नहीं है ?

ब्रा०—कोई ऐसा नहीं है जो मुट्ठी भर अन्न खानेको दे।

कुछ देर तक चन्द्रनाथ सिर झुकाकर कुछ सोचते रहे। फिर उन्होंने पूछा—आपकी जो यह एक कन्या है, उसका विवाह आप किस प्रकार करेंगी ?

ब्राह्मणीने लम्बी साँस खींचते हुए धीरे धीरे कहा—विश्वेश्वर जानें !

चन्द्रनाथ तब तक भोजन कर चुके थे। उन्होंने सिर उठाकर कहा—मैने तो कभी आपकी लड़कीको अच्छी तरह देखा नहीं, पर हरिदयाल कहते है कि वह बहुत ही शान्त और शिष्ट है। वह देखनेमें तो सुन्दर है न ?

ब्राह्मणीने कुछ हँसते हुए कहा—मै माँ ठहरी, और माँकी आँखोंका कोई विश्वास नहीं। तो भी जान पड़ता है कि सरयू बुरी नहीं है। पर मन ही मन उसने कहा—काशीमे इतने लोग आते जाते है, पर ऐसा रूप तो मैने आज तक किसीमे नही देखा।

इसके तीन चार दिनके बाद एक दिन प्रातःकालके समय चन्द्रनाथने सरयूको बहुत अच्छी तरह देख लिया। उन्होने समझ लिया कि ऐसा रूप ससारमें और कहीं न मिलेगा। उस समय सरयू रसोईघरमें बैठी हुई तरकारी चीर रही थी। और कोई वहाँ नही था। उसकी माँ गगास्नान करने गई हुई थी, और हरिदयाल अपने नित्यके नियमके अनुसार यात्रियोकी तलाशमे बाहर गए हुए थे।

चन्द्रनाथ उसके पास जा खडे हुए और बोले—सरयू !

सरयू चौक पड़ी और सकपका कर बोली—जी हाँ !

चन्द्र०—तुम्हें रसोई करना आता है ?

सरयूने सिर झुकाकर कहा—हाँ।

चन्द्र०—तुमने क्या क्या पकाना सीखा है ?

सरयूने कोई उत्तर नही दिया। उसने कदाचित् समझ लिया कि यदि मै यह बतला दूँगी तो फिर और भी बहुतसी बाते बतलानी पड़ेंगी।

चन्द्रनाथ उसके मनका भाव समझ गए, इस लिए उन्होने दूसरी बात छेड़ी। पूछा—तुम और तुम्हारी माँ दोनो ही यहाँ काम करती हो ?

सरयूने सिर झुकाकर कहा—हाँ ।

चन्द्र०—तुम्हें कितना महीना मिलता है ?

सरयू—महीना केवल माँको मिलता है, मुझे नहीं मिलता । मुझे केवल खानेको मिलता है ।

चन्द्र०—तुम केवल भोजन पर ही काम करती हो ?

सरयू चुप हो रही ।

चन्द्रनाथने कहा—मै समझता हूँ कि यदि मैं तुम्हें खानेको दूँ, तो तुम मेरा भी काम करोगी ।

सरयूने धीरेसे कहा—माँसे पूछूँगी ।

चन्द्र०—हाँ, पूछना ।

उसी दिन चन्द्रनाथने हरिदयाल घोषालसे दो चार बाते पूछकर अपने गुमाश्ताको इस प्रकार पत्र लिखा—

"मै आजकल काशीमें हूं । मैने निश्चय किया है कि यहीं मैं एक महीनेके अन्दर अपना विवाह करूँगा । मामाजीसे यह बात कह दीजिएगा और आप कुछ रुपए, कुछ जेवर और कुछ दूसरी आवश्यक चीजे लेकर शीघ्र यहाँ आ जाइए ।"

उसी मासमें सरयूके साथ चन्द्रनाथका विवाह हो गया ।

विवाह हो चुकने पर जब घर चलनेका समय आया, सरयूने रोकर कहा—माँका क्या होगा ?

चन्द्र०—वे भी हम लोगोंके साथ चलेंगी ।

यह बात ब्राह्मणीके कानोंतक भी पहुँची । उसने अपनी कन्या सरयूको एकान्तमें बुलाकर कहा—सरयू, तुम वहाँ जाकर बीच बीचमें मुझे याद तो करती रहना, पर मुँहसे कभी मेरा नाम न लेना । मैं

जब तक जीऊँगी तब तक काशी छोड़कर कहीं न जाऊँगी । हाँ, यदि फिर कभी तुम्हारा इधर आना हुआ, तो भेंट हो जायगी ।

सरयू रोने लगी ।

माताने आँचलसे कन्याका मुँह पोछते हुए और उसे रोनेसे मना करते हुए गम्भीर भावसे कहा—बेटी, तुम तो सब बाते जानती बूझती हो । जान बूझ कर कहीं इस तरह रोना होता है !

कन्याने माँकी गोदमे मुँह छिपाकर रोते हुए कहा—माँ—

माताने कहा—जब माताके लिए माताको भुला दिया जाय, तभी तो पूरी मातृभक्ति होगी ।

चन्द्रनाथके अनुरोध करने पर भी ब्राह्मणीने यही बात कही । उसने साफ कह दिया कि मै काशी छोड़कर और कहीं न जाऊँगी ।

चन्द्रनाथने फिर जिद करते हुए कहा—यदि आपकी और कहीं जानेकी बिल्कुल ही इच्छा न हो, तो आप काशीमें ही रहें, पर कमसे कम स्वाधीन होकर तो रहें ।

पर ब्राह्मणीने इस बातको भी अस्वीकृत करते हुए कहा—हरिदयालजी मुझे कन्याके समान मानते है । उन्होंने बहुत ही कष्टके समय मुझे आश्रय दिया है । मै भी उनपर पिताके समान भक्ति रखती हूँ । मै उन्हें किसी प्रकार नहीं छोड़ सकती ।

चन्द्रनाथने समझ लिया कि इस दुखियामे भी कुछ आत्मसन्मानका ज्ञान है । वह अपनी इच्छासे किसीकी दयाकी पात्री न होगी, इसलिए केवल सरयूको ही साथ लेकर चन्द्रनाथ अपने घर लौट आए ।

यहाँ आने पर सरयूने देखा कि बहुत लम्बा चौड़ा मकान है । घरमें साज सामान और माल असबाब भी बहुत है । यह सब देख-

कर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसने मन ही मन सोचा—इन्होंने मुझ पर कितना अनुग्रह, कितनी दया की है!

चन्द्रनाथने बालिका बधूसे आदरपूर्वक पूछा—घर बार सब देख लिया न? सब कुछ अच्छी तरह समझ लिया न?

सरयूने बहुत ही लज्जित होकर आँचलसे मुँह छिपा लिया और सिर झुका लिया। चन्द्रनाथ अपनी स्त्रीके मनका भाव नहीं जानना चाहते थे, वे केवल उसके कण्ठका स्वर सुनना चाहते थे। उन्होंने दोनों हाथोंसे सरयूका मुख ऊपर उठाकर पूछा—बतलाओ, सब समझ लिया न?

लज्जाके कारण सरयूका चेहरा लाल हो गया। स्वामीके बारबार पूछने पर उसने किसी प्रकार कहा—सब तुम्हारा ही है?

चन्द्रनाथने हँसकर उसीकी बातको दोहराते हुए कहा—हाँ, सब तुम्हारा ही है।

तीसरा परिच्छेद ।

इसके उपरान्त कुछ दिन यो ही बीत गए । अब सरयू बड़ी हो गई है । उसने स्वामीकी बहुत कुछ सेवा शुश्रूषा करना सीख लिया है । चन्द्रनाथ समझते है कि हमारे कुछ कहनेसे पहले ही सरयू हमारे मनकी बात समझ लेती है । परन्तु यदि वह केवल दासी ही होती, तो भी चन्द्रनाथ सारे संसारमें ढूँढ़ने पर भी ऐसी और दूसरी दासी न पा सकते । पर केवल दासी प्राप्त करनेके लिए ही कोई विवाह नहीं करता । स्त्रीसे और भी किसी बातकी आशा रखी जाती है । जान पड़ता है कि दासीके आचरणके साथ स्त्रीका आचरण मिलकर जो बिलकुल एक नही हो गया, वह अच्छा ही हुआ । सरयूका व्यवहार बहुत ही शुद्ध, बहुत ही मधुर था, परन्तु दम्पतिका जो वास्तविक और परिपूर्ण सुख होता है, वह सुख किसी प्रकार उत्पन्न न हो सका । तो भी इस प्रकार मिलन होनेपर, इतना आदर-सत्कार और सेवा-शुश्रूषा होने पर भी दोनोंमे एक प्रकारका दूरत्व, एक प्रकारका अन्तर किसी प्रकार हटना नहीं चाहता था । एक दिन उन्होने सरयूसे अचानक कहा—तुम मुझसे इतना डरती क्यो हो ? क्या मै तुम्हारे साथ किसी प्रकारका अनुचित व्यवहार करता हूँ ?

सरयूने मन ही मन कहा कि क्या इस बातका उत्तर तुम नहीं जानते ? इसके बाद उसने सोचा कि तुम देवता हो, महान् हो, और मैं ? मै घृणित हूँ । तुम प्रतिपालक हो, मै तुम्हारी आश्रित हूँ । तुम दाता हो, मै भिखारिणी हूँ ।

सरयूका समस्त हृदय कृतज्ञतासे परिपूर्ण था, इसी लिए उसका प्रेम सिर नहीं उठा सकता था । वह अन्तःसलिला फल्गुके समान

चुपचाप धीरे धीरे हृदयके सबसे भीतरी भागमें बहता रहता था, उच्छृंखल नहीं हो सकता था। वह प्रेम अविच्छिन्न और अविश्राम भावसे चला चलता था, पर चन्द्रनाथको उसका पता नहीं लगा था। जिस प्रकार कोई बहुत बड़ा अभागा अपने जीवनमें भगवान्‌को ढूँढने पर भी नहीं पाता, उसी प्रकार चन्द्रनाथको सरयूके हृदयका प्रेम भी दिखाई नहीं देता था। परन्तु आज जब उन्होंने दीपकके उज्वल प्रकाशमें अकस्मात् देखा कि सरयूकी पद्मके समान बड़ी बड़ी ऑखोंमें जल भर आया है, तब उन्होने कातर होकर उसे सहसा अपनी ओर खींच लिया। उनकी छाती पर सरयूका मुख आ पड़ा। उन्होंने कहा—नहीं नहीं, जाने दो, अब इन सब बातोंकी आवश्यकता नहीं। उन्होने दोनों हाथोंसे अपनी स्त्रीका मुख ऊपर उठाया। अपनी मुँदी हुई ऑखोपर सरयूने एक तप्त निश्वासका अनुभव किया।

चन्द्रनाथने कहा—जरा एक बार मेरी ओर देखो।

सरयूने अपनी दोनो पलकें आकुल भावसे आपसमे मिलाकर जोरसे मीच लीं। उससे देखा नहीं गया।

कुछ देर बाद चन्द्रनाथने लम्बी साँस लेकर कहा—सरयू, तुम्हे बहुत भय लगता है, इसी लिए तुम मेरी ओर नहीं देख सकीं। परन्तु यदि तुम देख सकतीं, तो बहुत अच्छा होता। अच्छा यदि तुम नहीं देख सकती हो तो एक काम करो। जब मै सोया रहूँ, तब तुम मेरा मुख बहुत अच्छी तरह देख लो। इस बातका मनमे निश्चय कर लो कि मेरे मुखमे कोई ऐसी बात नहीं है जिससे तुम्हे भय लगे। तुम मेरी छाती पर सिर रखकर पड़ी हो, क्या मेरे मनकी बात तुम्हें सुनाई नहीं देती? सरयू, मुझे बहुत दुःख हो रहा है। तुमने अभी तक मुझे पहचाना नहीं।

इतना होने पर भी सरयूके मुँहसे कोई बात नहीं निकल सकी। उसने मन ही मन स्वामीके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—मैं आपके चरणोंकी आश्रित दासी हूँ। दासीको सदा दासीके समान ही रहने देना।

चौथा परिच्छेद

चन्द्रनाथकी मामी हरकालीके मनको अब नाम मात्रके लिए भी चैन नहीं मिलता। वह सोचती है कि ईश्वरने मुझे किस दुर्दशामे फँसा दिया। कुछ लोगोंको यह ससार कण्टकोंसे भरे हुए वनके समान जान पड़ता है और उन्हे उसमें अपने लिए एक मार्ग ढूँढना पड़ता है। किसीको तो मार्ग मिल जाता है और किसीको नहीं मिलता। हरकाली भी बहुत दिनोंसे इस ससाररूपी जगलमें अपने लिए कोई सक्षिप्त मार्ग ढूँढ रही थी। चन्द्रनाथके पिताकी मृत्युसे उसे एक अच्छा मार्ग दिखाई भी देने लगा था, परन्तु इस आकस्मिक विवाह, वधू सरयू और चन्द्रनाथके बहुत अधिक पत्नी-प्रेमने उसके उस सीधे मार्गमे पत्थर रखकर उसे रूँध दिया था। हरकालीकी पाँच वर्षकी एक भानजी थी, जो अपने पिताके घरमे बड़ी होकर आज दस वर्षकी हो चुकी थी। पर अब तो उस बातको जाने ही देना चाहिए। इन्हीं सब कारणोंसे हमने कहा था कि हरकालीके मनकी सुख-शान्ति सब अन्तर्हित हो चुकी थी। इसमे सन्देह नहीं कि अब भी हरकाली ही घरकी मालकिन थी। उसका स्वामी सब कुछ करता धरता था। ये सब बाते पहलेके ही समान थीं। आज तक सरयू उसीका मुँह ताकती रहती है। किसी प्रकारका असन्तोष अथवा अभिमान नहीं प्रकट करती। देखनेमे यही जान पड़ता है कि इस परिवारमे वह एक बहुत ही साधारण प्राणी है। इस परिवारमे उसका भी कुछ दावा, कुछ अधिकार है, पर उसका आधार मानो दूसरोंका अनुग्रह ही है। हरकालीका पति उसे जरा सा देखते ही प्रसन्न हो जाता है और

कहना चाहता है कि–" हमारी बहू तो जैसे—" बस हरकाली लाल लाल आँखे करके और डपटकर कह बैठती है–बस बस, रहने दो, चुप रहो। जो बात समझमें न आवे, उसमें दखल मत दिया करो। यदि तुम्हारे हाथमे सौपनेके बदले माँ-बाप मुझे हाथ पैर बाँधकर पानीमें फेंक देते, तो भी अच्छा होता।

बस, इतना सुनते ही व्रजकिशोर मुँह मलीन करके वहाँसे उठ जाते है।

हरकालीकी अवस्था तीसके लगभग हो चली थी, पर सरयू अभी तक पूरे पन्द्रह वर्षकी भी नहीं हुई है। जबसे वह आई है, तबसे दोनोमे मानों मन ही मन युद्ध हो रहा है। प्राणपणसे चेष्टा करके भी हरकाली विजय नहीं प्राप्त कर सकती। एक जरा सी लडकीकी इतनी अधिक शक्ति देखकर हरकाली अवाक् हो गई है। बाहरवाले यह बात नहीं जानते कि इस अन्तर-युद्धमे सरयू डिक्री पा चुकी है, पर वह उस डिक्रीको जारी नहीं कराती। उसने अपनी डिक्री आप ही तमादी करके जीता हुआ अश स्वय ही उसे लौटा दिया है, और यहीं हरकालीकी पूरी पूरी हार हुई है।

हरकाली यह बात अच्छी तरह जानती है कि सरयू गूँगी नहीं है, बोलनेमे असमर्थ नही है। बहुत सी कडी कडी बातोका भी वह सिर झुकाकर और चुप रहकर ऐसा उत्तर दे सकती है कि हरकाली नितान्त स्तम्भित हो जाती है। परन्तु जब वह उस लडकीसे जीत नहीं सकती थी, तो उसे चाहिए था कि वह उससे सन्धि कर लेती, उसे अपनी बना लेती। सरयू यदि झगडालू या जबान-दराज होती, स्वार्थपर अथवा निर्दय होती, हिंसापरवश अथवा अभिमानिनी होती, तो बहुत सम्भव था कि हरकाली अपने लिए कोई मार्ग ढूँढ निकालती। परन्तु सरयूने

उसे अपने पाससे इतनी अधिक करुणा दे रखी है कि हरकालीको दूसरोंसे अपने लिए करुणाकी भिक्षा माँगनेका अवसर ही नहीं मिलता। सरयू अपने मनमें यह बात बहुत अच्छी तरह समझती है कि इस घरकी मै ही पूरी मालिक हूँ, हरकाली कोई नहीं है। इसी लिए वह ऊपरसे देखनेमें आप ही " कोई नहीं " हो गई है, और हरकालीको ही उसने " सब कुछ " बना दिया है। इसी लिए हरकाली और भी ईर्ष्याकी आगमें जली मरती है।

सरयूने केवल एक ही स्थान पूर्ण रूपसे अपने लिए रख छोड़ा था और उस स्थानमें हरकाली किसी प्रकार प्रवेश कर ही नहीं सकती थी। अपने स्वामीके चारो ओर उसने एक ऐसी सूक्ष्म रेखा खींच रखी थी, जिसके अन्दर हरकाली किसी प्रकार प्रवेश नहीं कर सकती थी, और चन्द्रनाथके शरीर पर नाम मात्रका भी निशान नहीं लगा सकती थी। उस रेखाके बाहर हरकाली जो कुछ चाहती थी, वह करती थी, पर उसके अन्दर प्रवेश करनेका उसे कोई अधिकार नहीं था। बुद्धिमती हरकाली बहुत अच्छी तरह समझती थी कि एक जरा सी लड़कीने एक माया-मन्त्रके बलसे मेरे नाखूनो और दाँतोंका सारा विष हरण कर लिया है।

इसी प्रकार करते करते लम्बे लम्बे छः वर्ष बीत गए। सरयू ग्यारह वर्षकी अवस्थामें अपने स्वामीका घर बसाने आई थी; अब वह सत्रह वर्षकी हो गई।

पाँचवाँ परिच्छेद।

अवस्थाके सन्मानका जैसा ज्ञान पुरुषोमें होता है, वैसा स्त्रियोंमें नहीं होता। पुरुषोंमें अवस्थाके बहुत से पर्याय हैं, जैसे दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ आदि। तीस वर्षकी अवस्थाका एक युवक बीस वर्षकी अवस्थावाले किसी दूसरे युवकको बहुत कुछ उसी प्रकार देख सकता है, जिस प्रकार बड़े लोग अपनेसे छोटी अवस्थावाले लोगोंको देखा करते है। परन्तु स्त्रियोंमे यह बात नहीं होती। जब तक स्त्रियोंका विवाह नहीं होता, तब तक वे अपनी बड़ी बहन, भाभी, माँ, बूआ अथवा दादीके पास छोटोंकी भाँति रहकर थोड़ी बहुत उम्मेदवारी करती है, नारी-जीवनमें जो कुछ थोड़ी बहुत सीखनेकी बातें होती हैं, वे सब सीख लेती है, और फिर उसके उपरान्त वे एक दमसे सबसे ऊँची श्रेणीमे जा बैठती है। उस समय सोलह वर्षसे लेकर छप्पन वर्ष तककी सभी स्त्रियाँ मानो समान अवस्थावाली ही होती हैं। स्थानके भेदसे अवश्य ही कहीं कही इस नियममें बहुत ही साधारण प्रभेद दिखाई देता है, परन्तु अधिकाश अवसरों पर इसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम नहीं होता। चन्द्रनाथके गाँवमें हरिबाला नामकी एक स्त्री रहती थी, जो उसी गाँवकी लडकी थी और गावके सम्बन्धसे ही उनकी बहन भी होती थी। कमसे कम उस हरिबालामें तो अवस्थाके सम्बन्धमे यही बात देखनेमे आती थी। एक दिन दोपहरके समय सरयू अपने घरके पश्चिमका जगला खोलकर चुपचाप खड़ी हुई आकाशकी ओर देख रही थी। हरिबाला एक थालीमें कुछ मिठाई और हाथमे जूहीका एक बड़ा गजरा लिए हुए एकाएक उसके

पास आ खड़ी हुई। उसने वह गजरा सरयूको पहनाकर कहा—आजसे तुम मेरी सखी हुई। एक बार मुझे 'सखी' कहो तो सही।

सरयू कुछ सकपका गई। फिर भी उसने मुस्कराकर कहा—अच्छा।

हरि०—खाली 'अच्छा' कहनेसे काम नहीं चलेगा। तुम्हें मुझे 'सखी' कहना पड़ेगा।

चाहे इसे आदर कहो और चाहे लाड़ कहो, पर सरयूके जीवनमें इससे पहले आज तक कभी ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी। इसी लिए वह इस आकस्मिक आत्मीयताको अपने मनके साथ मिला न सकी। अवस्थामे उससे बहुत बड़ी एक स्त्री आती है और क्षण भरमें उसका गला दबाकर उसे 'सखी' कहनेके लिए कहती है, यह देखकर उसे बहुत लज्जा आई। पर हरिबाला उसे किसी प्रकार छोड़ती ही नहीं थी। यह बात हरिबालाकी समझके बिलकुल बाहर थी कि इसमें किसी प्रकारकी नवीनता या अस्वाभाविकता भी हो सकती है। इसी लिए जब उसने देखा कि सरयू इस प्रकारका प्रियसम्बोधन करनेमें कुछ विलम्ब कर रही है, तब उसने कुछ तो गम्भीर भाव धारण करके और कुछ उदास होकर कहा—अच्छा, तो फिर तुम मेरा गजरा फेर दो। मैं अब और किसीके पास जाऊँगी।

सरयू कुछ सकपका तो गई थी, पर अप्रतिभ नहीं हुई थी। उसने मुस्करा कर कोमल स्वरसे कहा—सखी ढूँढने ही जाओगी या और कहीं?

हरिबालाने कुछ देर तक चुप रहकर कहा—वाह, यह तुमने खूब कहा! लोग तो कहते है कि बहू बोलना ही नहीं जानती।

सरयू हँसने लगी।

हरिबालाने कहा—अच्छा लो सुनो। इस गाँवमे तुम्हारी कोई सखी नहीं है। मै यह जानती हूँ कि कुछ तो बड़े आदमीका घर समझकर

और कुछ तुम्हारी मार्मीकी बातोंके कारण कोई तुम्हारे पास नहीं आता, इसी लिए अब मैं तुम्हारे घर आया करूँगी । पर जब तक किसी प्रकारका सम्पर्क न हो, तब तक आना जाना ठीक नहीं होता, इसी लिए मैंने आज तुम्हें अपनी सखी बनाया है । मै अब बुड्ढी तो अवश्य हो गई हूँ, पर ईश्वरके नामकी माला जपकर भी मुझसे सारा दिन नहीं बिताया जाता । अब मैं तुम्हारे यहाँ नित्य आया करूँगी ।

सरयूने कहा—हाँ, नित्य आइएगा ।

हरिबालाने गरजकर कहा—' आइएगा ' क्या? नहीं सखी, तुम यह कहो कि 'नित्य आया करो ।' बता, तुझसे 'तू' कहा जायगा या नहीं?

सरयू हँस पड़ी और बोली—नहीं बहन, मुझे क्षमा करो । यदि मेरे गले पर छुरी भी फेरोगी, तो भी यह मुझसे न कहा जायगा ।

हरिबालाने भी हँसकर कहा—अच्छा, यदि ' तू ' नहीं कहा जाता, तो न सही; पर हाँ, ' तुम ' अवश्य कहना पड़ेगा । अच्छा कहो—" सखी, तुम नित्य आया करो । "

सरयूने सिर झुकाकर लज्जित भावसे कहा—सखी, तुम नित्य आया करो ।

अब मानों हरिबालाकी बहुत बड़ी चिन्ता दूर हो गई । उसने कहा—हाँ, मैं आया करूँगी ।

दूसरे ही दिनसे हरिबाला प्रायः नित्य ही सरयूके पास आने लगी । वह सौ काम छोड़कर भी एक बार जरूर आकर हाजिरी दे जाया करती थी । धीरे धीरे स्थापित किया हुआ सखीवाला सम्बन्ध दृढ़ होने लगा । समय पाकर सरयू भी यह बात भूल गई कि हरिबाला अवस्थामें समान नहीं, अथवा उसे इस बातका भी ध्यान न रह गया कि हम लोगोंका इतना अधिक मेल जोल भी देखनेमें कुछ बहुत अच्छा नहीं जान पड़ता ।

हम यह तो नहीं कह सकते कि इन दोनोंकी इतनी अधिक अन्तरंगता हरकालीको कैसी लगती थी, पर हाँ, चन्द्रनाथको बहुत भली लगती थी। इस विषयमें अपनी स्त्रीके साथ उनकी प्रायः बात हुआ करती थीं। हरिबालाके इस आकस्मिक और उनकी दृष्टिसे बहुत कुछ अस्वाभाविक मेल-जोलसे उन्हें बहुत अधिक प्रसन्नता होती थी। एक और भी कारण था। चन्द्रनाथ अपनी स्त्रीसे बहुत अधिक स्नेह करते थे। पूर्ण रूपसे हार्दिक प्रेम न होने पर भी स्नेहका उनमें अभाव नहीं था। वे मन ही मन सोचते थे कि सबके भाग्यमें एक सी स्त्री नहीं होती। किसीकी स्त्री दासी होती है, किसीकी मित्र होती है और किसीकी प्रभु होती है। यदि हमारे भाग्यसे एक पुण्यवती, पवित्र, साध्वी और स्नेहमयी दासी मिली है, तो हमारे दुःखी होनेसे क्या लाभ होगा! इसके अतिरिक्त एक और बात भी प्रायः उनके मनमे आया करती थी। वह थी सरयूके बीते हुए दिनोंकी दुःखभरी कहानी। उसका बचपन बड़े ही दुःख और कष्टकी अवस्थामे बीता था। सम्भव था कि उस दुःखिनी कन्याका सारा जीवन ही दुःखमें बीतता। सम्भव था कि वह अब तक किसी अभागे दुश्चरित्रके हाथमें पड़कर आँखोंसे आँसू बहाया करती; अथवा दासी बनकर अपना जीवन बिताती और उस अवस्थामें अनेक प्रकारके अत्याचार और कष्ट सहती। यदि इन सब बातोंको छोड़ दिया जाय, तो इतना अधिक रूप-यौवन होने पर नरकका मार्ग भी उसके लिए कुछ दुरूह नहीं होता। यदि यही बात हो जाती तो!

ज्यों ही यह बात चन्द्रनाथके मनमें आती, त्यों ही वे गम्भीर करुणासे सरयूका लज्जित मुख ऊपर उठाकर पूछा करते—अच्छा सरयू, भला यह तो बतलाओ कि यदि मै तुम्हें न देखता, तुम्हारे साथ ब्याह न करता, तो इतने दिनों तक तुम किसके पास रहतीं?

सरयू इस बातका कोई उत्तर न देती। वह भयभीत होकर खिसककर अपने स्वामीकी छातीसे लग जाती। चन्द्रनाथ बहुत ही स्नेहसे उसके माथे पर हाथ रखते, मानों उसे साहस दिलाते हुए मन ही मन कहते—नहीं, तुम्हें डर किस बातका है!

सरयू खिसककर उनके और भी पास आ जाती थी। सचमुच इस प्रकारकी बातोंसे वह बहुत ही भयभीत होती थी। चन्द्रनाथ भी सम्भवत· यह बात समझकर उसे खींचकर छातीसे लगा लेते थे और कहते थे—नहीं सरयू, यह बात नहीं है। समझमें नहीं आता कि तुमने एक दु खीके घर जाकर क्यो जन्म लिया था। पर हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हीं मेरी जन्म जन्मान्तरकी पतिव्रता स्त्री हो। तुम संसार भरमें चाहे जिस जगह होतीं, पर मुझे खिंचकर तुम्हारे पास जाना ही पड़ता। सरयू, तुम्हारे आकर्षणसे ही मैं काशी गया था।

इस प्रकारकी बाते कहते समय चन्द्रनाथके हृदयमें जिस भावका स्रोत बहा करता था, जान पड़ता है कि सरयूके समस्त स्नेह, प्रेम, सेवा और भक्ति एक साथ मिलाने पर भी उस भावके साथ तुलना नहीं हो सकती थी। परन्तु इतना होने पर भी किसी दु·खी पर अनुग्रह और दया करनेसे जो अभिमान, जो तृप्ति होती है, बालिका सरयूके साथ विवाह करते समय उसी अभिमान, उसी तृप्तिने एक दिन आत्मप्रसादका छद्म वेश धारण करके चन्द्रनाथके हृदयमें चुपचाप प्रवेश किया था, और अब आज सैकड़ों चेष्टाएँ करने पर भी चन्द्रनाथ पूर्ण रूपसे उसका उच्छेद नहीं कर सकते। हृदयके किसी अज्ञात और अन्धकारमय कोनेमें वह भाव पड़ा ही रह जाता है। पर ज्योंही वह भाव सिर उठाकर ऊपर आना चाहता है, त्योंही चन्द्रनाथ सरयूको खींचकर जोरसे अपनी छातीसे लगा लेते हैं

और कहते हैं—सरयू, मुझे इस बातका बहुत ही आश्चर्य होता है, कि जिसे तुम बहुत दिनोंसे बराबर देखती चली आनी हो, आज भी उसे पहचाननेमें तुम्हे क्यो विलम्ब हो रहा है ! मैने तो काशीमे तुम्हें देखते ही पहचान लिया था कि तुम मेरी हो ! कितने ही युगों, कितने ही कल्पो, कितने ही जन्मोंसे तुम मेरी हो ! क्या जाने क्यों हम लोग अलग हो गए थे। पर अब फिर मिलकर एक होनेके लिए आए हैं।

सरयू उनकी गोदमें मुँह छिपाकर कोमल स्वरसे कहा करती—क्या कहा ? मै तुम्हे पहचान नहीं सकी ?

उत्साहकी अधिकताके कारण चन्द्रनाथ सरयूके लज्जित मुखको उठाकर अपने मुखके सामने करते और कहते—तुमने मुझे पहचान लिया ? यदि सचमुच पहचान लिया तो फिर मुझसे इतना डरती क्यों हो ? मै तो तुम्हारे साथ कोई दुर्व्यवहार भी नहीं करता। सरयू, मैं तो तुम्हे स्वय अपने आपसे भी बढ़कर चाहता हूँ।

सरयू फिर अपने स्वामीकी गोदमें अपना सिर छिपा लेती। चन्द्रनाथ उससे फिर पूछते—बताओ, तुम मुझसे क्यो डरती हो ?

अब सरयूके मुँहसे उत्तर नहीं निकलता था। भला स्वामीको स्पर्श करके वह कोई झूठ बात क्यों कर कह सकती थी ! वह कैसे यह कह सकती थी कि मुझे भय नहीं लगता ! सचमुच उसे बहुत ही भय लगता था और वह भय कितना वास्तविक और कितना अधिक था, यह उसे छोड़कर और कोई नहीं जानता था।

हाँ, हम क्या कह रहे थे ! यही कि हरिबालाको आते जाते देखकर चन्द्रनाथ बहुत प्रसन्न होते थे। चन्द्रनाथकी प्रसन्नताका कारण केवल यही था कि सरयूको एक सखी तो मिल गई। उसे एक ऐसा आदमी तो मिल गया, जिससे वह अपने मनकी दो बातें कह सकेगी।

एक दिन सरयू दोपहर भर हरिबालाका आसरा देखती हुई बैठी रही। आकाशमें मेघ छाए हुए थे और बूँदाबाँदी हो रही थी। हरिबाला नहीं आई। सरयूने सोचा कि पानी बरस रहा है, इसी लिए वह आज नहीं आई। अब सन्ध्या होनेका समय आ गया था। उसने सारा दिन अकेले बैठकर काटा था। हरकाली भी आज घरमें नहीं थी। सरयूने उस समय कुछ साहस किया और वह धीरे धीरे चलकर अपने स्वामीके पढ़नेके कमरेमें पहुँची। जब तक कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती थी, तब तक कोई इस कमरेमे नहीं आता था। यहाँ तक कि सरयू भी नहीं आती थी। चन्द्रनाथने पुस्तक रखकर सिर उठाया और कहा—जान पड़ता है कि आज तुम्हारी सखी नहीं आई।

सर०—नहीं।

चन्द्र०—तभी शायद तुम्हें मेरा ध्यान आया?

सरयू कुछ हँस पड़ी। उस समय उसके मनका भाव यही था कि मनमे तो तुम्हारा ध्यान सदा बना रहता है, पर तुम्हारे पास आनेका साहस नहीं होता। उसने कहा—जान पड़ता है कि आज पानी बरसनेके कारण ही वह नहीं आई।

चन्द्र०—मैं समझता हूँ कि यह बात नहीं है। आज चाचाजीकी छोटी लड़की निर्मलाको उसके ससुरालवाले देखने आए हैं। शीघ्र ही उसका विवाह होनेवाला है। जान पड़ता है कि आज वह वहींके काम धन्धेमें लगी है।

सरयूने कहा—हाँ, हो सकता है।

कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त चन्द्रनाथने कहा—क्या कहूँ, मुझे इस बातका बहुत दुःख है कि हम लोग अलग होकर मानों बिलकुल पराए हो गए हैं। आज मामी कहाँ है?

सर०—जान पड़ता है कि वे भी आज वहीं गई है।

चन्द्रनाथ चुप होकर कुछ सोचने लग गए।

सरयू धीरे धीरे आगे बढकर एक ओर उनके पास जा बैठी और बोली—बताओ न, क्या सोच रहे हो!

चन्द्रनाथने हँसनेकी चेष्टा करते हुए सरयूका हाथ खींचकर अपने हाथमें ले लिया और धीरे धीरे कहना आरम्भ किया। नहीं सरयू, कोई ऐसी बात नहीं है। मैं यही सोच रहा था कि निर्मलाका विवाह होने-वाला है, और चाचाजीने मुझे इसकी खबर तक न की और मामीको बुलवा भेजा। इसका तो यही मतलब हुआ कि हम ही दोनों आदमी पराए ठहरे।

चन्द्रनाथके स्वरमे कुछ कातरता थी। सरयूका ध्यान उस कातरता पर गया था, इसी लिए उसने कहा—मुझे अपने चरणोमे स्थान देकर तुम और भी पराए हो गए हो। नहीं तो शायद इतने दिनोंमें तुम लोगोंमें मेल हो गया होता।

चन्द्रनाथने हँसकर कहा—नहीं, मेल होनेकी आवश्यकता नहीं। कुछ यह बात तो है नहीं कि तुमसे अलग रहकर चाचाजीसे मेल करनेमें मुझे कोई विशेष सुख होता। हम यों ही बहुत अच्छे हैं। जिस समय मैंने अपना विवाह किया था, उस समय यदि मैं चाचाजीकी सलाह लेता, तो आशा तो नहीं थी कि मैं तुम्हें पा सकता। एक न एक बाधा अवश्य उठ खड़ी होती। चाहे कुलका झगड़ा निकलता और चाहे वंशका बखेड़ा खड़ा होता; किसी न किसी तरह इस विवा-हमें बाधा अवश्य पड़ती।

सरयू सिहिर उठी। उस समय सन्ध्याकी छायाने घरमें अँधेरा कर दिया था, इसी लिए चन्द्रनाथ उसका चेहरा नहीं देख सके थे, पर

उसका जो हाथ उनके हाथमें था, वह हाथ भी काँप उठा था। इस प्रकार सरयून मानों उस हाथके द्वारा अपने मनकी सारी बाते चन्द्रनाथ पर प्रकट कर दी थीं। चन्द्रनाथने हँसकर कहा—अब तुम समझ गई कि मैने चाचाजीसे जो सलाह नहीं ली, यह अच्छा किया या बुरा किया!

कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त सरयूने कहा—मै क्या जानू! पर हाँ, मैं यह जानती हूँ कि तुम्हे मेरे जैसी सैकड़ो हजारों दासियाँ मिल जातीं।

चन्द्रनाथने सरयूका कोमल हाथ धीरेसे दबाते हुए कहा—मै यह सब कुछ नहीं जानता। मै तो यही जानता हूँ कि मेरी एक ही दासी है और उस दासीके अभावकी बात भी मै नहीं सोच सकता। सैकड़ों हजारोंकी बात तो यदि तुम चाहो तो सोच सकती हो।

दूसरे दिन हरिबाला आई, पर उसके मुखका भाव कुछ और ही प्रकारका था। उसने नित्यकी भाँति जबरदस्ती गला दबाकर और 'सखी सखी' कहकर सरयूको तग नहीं किया और न बार बार खेलनेके लिए ताश लानेका उतने शौकसे आग्रह किया। वह मुँह बनाए हुए चुपचाप बैठी रही।

सरयूने कहा—सखी, कल तुम नहीं आई।

हरि०—हाँ बहन, कल बहुत काम था। उस घरमे निर्मलाका ब्याह है न।

सर०—हाँ, सुना है। सब ठीक ठाक हो गया है?

हरिबालाने सरयूके उस प्रश्नका उत्तर न देकर उसके मुँहकी ओर देखते हुए कहा—सखी, एक बात पूछूँ? ठीक ठीक बतलाओगी?

सर०—कौन सी बात?

हरि०—यदि सच सच बतलाओ, तब तो पूछूँ। नहीं तो फिर पूछनेसे लाभ ही क्या?

सरयू कुछ चिन्तित हुई। उसने कहा—क्यो, सच क्यों नहीं बतलाऊँगी?

हरि०—बताओ, तुम मेरा विश्वास तो करती हो न?

सर०—हाँ, क्यो नहीं करती!

हरि०—अच्छा तो फिर बताओ तो सही कि चन्द्रनाथ तुम्हें कितना प्यार करते हैं।

सरयूने कुछ लज्जित होकर कहा—मुझ पर बहुत दया रखते हैं।

हरि०—नहीं, यहाँ दयाकी बात नहीं है। मै यह पूछती हूँ कि वह तुम्हें खूब प्यार करते है या नहीं?

सरयू हँस पड़ी। बोली—भला यह मै क्योकर जान सकती हूँ कि खूब प्यार करते है या कम?

हरि०—तुम सचमुच नहीं जानतीं?

सर०—नहीं।

सचमुच सरयू यह बात नहीं जानती थी। हरिबाला मानों बड़े सोच विचारमे पड़ गई। उसने सिर हिलाकर कहा—स्त्री यह नहीं जानती कि स्वामी उसे कितना अधिक प्यार करता है। बस, यहीं मुझे बहुत भय होता है।

उस समय हरिबालाके मुखपर जो भाव था, उसमे एक आन्तरिक शका छिपी हुई थी। यह बात समझकर सरयू भी कुछ शकित हुई। उसने पूछा—क्यों भय किस बातका?

हरि०—यह फिर किसी दिन सुन लेना।

थोड़ी देर बाद सरयूकी ठोढी पर हाथ रखकर हरिबालाने कोमल स्वरसे कहा—क्यों सखी, इतना रूप, इतना गुण, इतनी बुद्धि लेकर भी क्या इतने दिनोंतक तुम घास छीलती थीं?

सरयू हँस पड़ी।

छट्ठा परिच्छेद ।

अभी तक बात किसी पर खुली नहीं थी । वह हरिदयाल घोषालके सन्देहमें ही छिपी थी । एक आदमी था जो देखनेमें भला आदमी जान पड़ता था, पर उसके कपडे फटे पुराने थे । आज दो तीन दिनसे वह आने लगा था और ब्राह्मणी सुलोचना देवीसे चुपचाप कुछ परामर्श करके चला जाता था । सुलोचना समझती थी कि हरिदयाल यह बात नहीं जानते, पर उन्हें यह बात मालूम हो गई थी।

आज दोपहरके समय हरिदयाल और उनके चाचा कैलास घरमें बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे । इतनेमे अन्दर आँगनमे कुछ शोर-गुल सुनाई पड़ा । मानों कोई कोमल कण्ठसे कातर होकर दयाकी भिक्षा कर रहा थ और दूसरा कोई कर्कश स्वरसे तीव्र भाषामें तिरस्कार कर रहा था और भय दिखला रहा था । एक स्त्री थी और दूसरा पुरुष । हरिदयालने कहा—चाचाजी, घरमे यह क्या बखेड़ा हो रहा है ?

कैलास चाचाने कहा—देखो, सँभालो, यह किश्त लगी ।

फिर थोड़ी देर तक कुछ सुनाई नहीं दिया । पर थोड़ी देर बाद फिर घरमें शोर सुनाई देने लगा । यह देखकर हरिदयाल उठ खड़े हुए और बोले—जरा ठहरो, मै देख आऊँ ।

चाचा कैलासने उनका पल्ला पकड़कर कहा—देखो, तुम्हारी बाजी हार रही है ।

हरिदयाल फिर बैठ गए । पर शोर किसी तरह थमता ही न था । लाचार होकर हरिदयाल फिर उठ खड़े हुए । आँगनमें पहुँचकर उन्होंने

देखा कि सुलोचना दोनो हाथोंसे उस आदमीके पैर पकड़े हुए बैठी है और वह बराबर जोर जोरसे कहता है—मेरी बात मान लो। नहीं तो मै जो कुछ कहता हूँ, वही करूँगा।

सुलोचना रोकर कह रही थी—मुझे क्षमा करो। तुम एक बार तो मेरा सर्वनाश कर ही चुके हो। अब जो कुछ बच रहा है, उसे तो नष्ट न करो।

वह कहता था—तुम्हारी लड़की इतने बड़े आदमीके घर ब्याही गई है, तुम दो हजार रुपए नहीं दे सकतीं? बस मुझे रुपए मिल जायँ और मै चला जाऊँगा।

सुलोचनाने कहा—तुम शराबी और बदचलन हो। दो हजार रुपए तुम्हारे हाथमें कितने दिनों तक ठहरेंगे? तुम फिर आओगे और फिर रुपए माँगोगे। चाहे जो हो, मैं तुम्हें रुपए नहीं दूँगी।

उसने कहा—मैं शराब पीना छोड़ दूँगा, रोजगार करूँगा, और फिर कभी तुम्हारे पास रुपए माँगने नहीं आऊँगा।

सुलोचनाने उसकी इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया और जमीन पर सिर रखकर हाथ जोड़कर कहा—तुम मुझ पर दया करो। मुझसे रुपएके लिए सरयूसे अनुरोध नहीं किया जायगा।

उन दोनोमेंसे किसीने अभी तक यह नहीं देखा था कि हरिदयाल आ कर पास ही खड़े हुए हैं, इसी लिए वे लोग जोर जोरसे ये सब बातें कर रहे थे। अब हरिदयाल उन लोगोंके और भी पास आ खड़े हुए। सहसा दोनों आदमी चौक पड़े। हरिदयालने उस अपरिचित आदमीके पास पहुँच कर पूछा—तुम किसके हुक्मसे इस मकानमें आए हो?

पहले तो वह आदमी कुछ देर तक सिट पिटाया हुआ खड़ा रहा, पर जब उसने समझ लिया कि मैंने जो कुछ किया है, वह कानूनकी दृष्टिसे ठीक नहीं है, तब वह वहाँसे खिसकनेकी तैयारी करने लगा। पर हरिदयालने कसकर उसका हाथ पकड़ लिया और जोरसे चिल्ला-कर पूछा—तुम किसके हुक्मसे यहाँ आए हो ?

जब उसने देखा कि यहाँसे भागनेका कोई उपाय नहीं है, तब उसने कुछ साहस करके कहा—मैं सुलोचनाके पास आया था।

उस आदमीके मुँहसे शराबकी बहुत तेज बदबू आ रही थी और उसके सारे शरीर पर हीनता और अत्याचारकी मलिन छाया पड़ी हुई थी। हरिदयालने घृणासे मुँह बनाकर उसी प्रकार कर्कश स्वरमे फिर पूछा—पर तुम किसके हुक्मसे यहाँ आए ?

वह बोला—हुक्म कैसा ?

अब उस आदमीके चेहरेका भाव कुछ बदल गया। सहसा मानों उसे यह याद आ गया कि प्रश्नकर्त्ता पर मेरा कुछ जोर है और इस मकान पर भी मेरा कुछ हक है। इस प्रकारका उत्तर सुनकर हरिदयाल बहुत बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने फिर चिल्लाकर कहा—बदमाश, शराबी, जानता है, मै तुझे अभी जेल भेज सकता हूँ।

उस आदमीने मुँह चिढाकर कहा—हाँ हाँ, सब जानता हूँ।

हरिदयाल उसे मारनेके लिए तैयार हो गए। बोले—सब जानता है ! चल, अभी तुझे पुलिसमें देता हूँ।

उस आदमीने कुछ हँसकर इस प्रकारका भाव प्रकट किया कि मानों पुलिसमे जानेमें उसे कोई विशेष आपत्ति नहीं है। उसने कहा—अभी ले चलोगे ?

हरिदयालने उसे धक्का देकर कहा—हाँ, अभी।

धक्का सँभालकर और स्थिर होकर उस आदमीने गम्भीर भावसे कहा—पण्डितजी, तुम एक दमसे इतनी बहादुरी मत दिखलाओ। चाहे तुम मुझे पुलिसमें दो और चाहे थानेमे दो, पर जरा ठहरकर देना। तुम जानते हो कि मै तुम्हारा बनारसमें रहना छुड़ा सकता हूँ?

हरिदयालने पागलोकी तरह चिल्लाकर कहा—अबे चल, मुझे बनारसमें रहते चालीस बरस हो गए, यह आया है आज बनारस छुड़ाने।

हरिदयालने सोचा था कि यह आदमी मुझे गुण्डोंका भय दिखला रहा है। बहुतसे लोग इस तरहकी बातोसे डर जाया करते हैं, पर हरिदयाल बहुत दिनोंसे काशीमे रहते थे, उन्हे ऐसी बातोंका भय नहीं था, इसलिए उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा—आया है हमसे गुण्ड पन करने!

वह बोला—नहीं पण्डित जी, यह गुण्डापन नहीं है। अब तुम मुझे पुलिसमे ले चलो। वहीं चलकर मै सब बतला दूँगा।

हरि०—कौन सी बात बतलाओगे?

आ०—जो कुछ मै जानता हूँ, वही बतलाऊँगा। मै ऐसी बातें बतलाऊँगा कि तुम्हें बनारससे भागनेका रास्ता न मिलेगा। मै ऐसी बात बतलाऊँगा जिससे देश भरके लोग सुन लेंगे कि तुम जातिसे च्युत हो, अब्राह्मण हो।

हरि०—मैं जातिसे च्युत और अब्राह्मण हूँ?

आ०—पण्डितजी, नाराज मत होना। सचमुच तुम जातिसे च्युत हो। सिर्फ तुम्हीं नहीं, अब तक जितने भले आदमी विश्वास करके तुम्हारे पास आए हैं, इधर तीन बरसमें जितने लोगोको तुमने अपने यहाँ भोजन कराया है, उन सबकी भी जाति चली गई। मै उन सब लोगोसे जाकर यह बात कहूँगा।

अब हरिदयालको कुछ भय होने लगा। भयका यथार्थ कारण समझनेसे पहले ही उनका तीव्र स्वर मन्द पड़ गया। तो भी उन्होंने कहा—क्या मैंने लोगोंकी जाति बिगाड़ी है ?

आ०—जरूर; और इस बातको प्रमाणित करनेका भार भी मुझ पर ही है।

हरिदयालने नरम होकर धीरेसे कहा—अरे भाई, बात क्या है, कुछ बतलाओ तो सही।

उस आदमीने मुस्कराकर कहा—तुम अकेले ही सुनोगे या और दस पाँच आदमियोंको बुला लोगे ? मै तो कहता हूँ कि और भी दस पाँच आदमियोंको बुला लो। पास पड़ोसके दस पाँच आदमियोंके सामने बात अच्छी तरह होगी।

हरिदयालने उसका हाथ पकड़कर कहा—भाई, गुस्से मत हो। मैं तुम्हारे साथ बहुत अन्याय कर गया। तुम इन बातोपर ध्यान न देना। आओ, अन्दर चलो।

वहाँसे चलकर दोनों आदमी एक कमरेमें जा बैठे। हरिदयालने पूछा—हाँ, तो फिर क्या बात है ?

उसने पूछा—यह सुलोचना जिसके हाथकी तुम रसोई खाते हो, तुम्हें कहाँ मिली थी ?

हरि०—यहीं मिली थी। वह किसी दुःखीकी कन्या थी। मैंने उसे अपने यहाँ आश्रय दिया था।

आ०—मैं यह नहीं कहता कि तुमने धनवान्‌को अपने यहाँ आश्रय दिया है। पर यह बतलाओ कि तुमने कभी इस बातकी भी खोज की कि वह कौन जाति है ?

हरिदयालके चेहरेका रग एकदमसे फीका पड़ गया। उन्होंने कहा—वह ब्राह्मणकी कन्या थी, शुद्ध आचरणकी थी; उसके हाथका भोजन करनेमें क्या दोष था ?

आ०—यह तो ठीक है कि वह ब्राह्मणकी कन्या है और विधवा है, पर यह तो बतलाओ कि जो स्त्री अपना घर छोड़कर दूसरेके साथ निकल जाय, क्या उसे भी शुद्ध आचरणवाली कहेंगे ? या उसके हाथका भोजन करेंगे ?

हरिदयालने दाँतोंसे जीभ काटते हुए कहा—शिव! शिव! भला उसके हाथका कोई कैसे खा सकता है!

आ०—यही तो मै भी कहता हूँ। पन्द्रह सोलह बरस हुए, यह सुलोचना गोदमें तीन बरसकी लड़की लेकर घरसे निकल गई थी और उसे आश्रय देकर तुमने अपना और साथ ही और भी बहुत से लोगोका धर्म बिगाड़ा है।

हरि०—इसका प्रमाण ?

आ०—प्रमाण क्यों नहीं है! उसके लिए चिन्ता मत करो। जिनके साथ यह घरसे निकली थी, वे असीम प्रेमास्पद राखाल भट्टाचार्य अभी तक जीते हैं।

हरिदयाल कुछ देर तक उस आदमीके मुँहकी ओर देखते रहे। उन्होंने समझा कि शायद इसीका नाम राखाल है। उन्होंने पूछा—क्या तुम्हीं वह ब्राह्मण हो ?

उस आदमीने अपने मैले कुचैले दुपट्टेमेंसे और भी अधिक मैला कुचैला तथा छिन्न विच्छिन्न यज्ञोपवीत निकाला और हँसते हुए कहा—नहीं, मै ग्वाला हूँ।

हरिदयाल कुछ और खिसककर बैठ गए और बोले—तुम्हें देखनेसे तो यह जान पड़ता था कि चमार हो। खैर, नमस्कार!

उस आदमीको क्रोध नहीं हुआ। उसने कहा—नमस्कार। तुम्हारा अनुमान मिथ्या नहीं है। तुम मुझे चमार भी कह सकते हो, मुसलमान या ईसाई भी कह सकते हो। मैं जात पाँत कुछ भी नहीं मानता। मै परमहस हूँ।

हरि०—तुम बड़े भारी पाखण्डी हो।

वह बोला—इसकी कोई आवश्यकता नहीं है कि मुझे इस बातका स्मरण दिलाया जाय, क्योंकि इससे पहले और भी बहुतसे लोग अनुग्रह करके यह बात कह चुके है। मै अब भी यह समझता हूँ कि पहले मै क्या था और अब क्या हो गया हूँ। पर यह ठीक है कि मै ही राखालदास हूँ।

हरिदयालका चेहरा बहुत अधिक क्रोधमे लाल हो उठा। उन्होंने बड़ी कठिनतासे अपने मनका भाव छिपाते हुए कहा—अच्छा, यह बतलाओ कि अब तुम क्या करना चाहते हो। तुम सुलोचनाको ले जाओगे?

रा०—जी नहीं। इससे फिर आपको खाने पीनेका कष्ट होगा, मै ऐसा अधम नहीं हूँ।

बहुत अधिक कष्ट सहकर हरिदयालने यह परिहास भी सुन लिया। इसके बाद उन्होंने कहा—अच्छा, तो फिर यह बतलाओ कि तुम क्या चाहते हो और यहाँ किस लिए आए हो।

रा०—मुझे तो खाली रुपया चाहिए। मेरे पास एक पैसा नहीं है, बडे कष्टमे हूँ, इसी लिए यहाँ आया हूँ। बस मुझे हजार दो हजार रुपए मिले, मै चुपचाप चला जाऊँगा।

हरि०—भला इतना रुपया तुम्हें कौन देगा ?

रा०—जिसे गरज होगी। आप देंगे, सुलोचनाका दामाद देगा, जो बहुत बड़ा आदमी है।

हरिदयाल उसका इतना हौसला देखकर मन ही मन बहुत चकित हुए। पर वे यह भी समझ गए कि यह आदमी बहुत बड़ा धूर्त और चलता पुरजा है। उन्होने कहा—भाई, मैं तो गरीब आदमी हूँ। मैंने तो इतने रुपए कभी आखसे भी नहीं देखे। पर हॉ, यह ठीक है कि सुलोचनाका दामाद दे सकता है। पर वह देगा नहीं। तुम अभी उसे पहचानते नहीं। दो हजार रुपए तो दूर रहे, भय दिखलाकर तो तुम उससे दो पैसे भी नहीं ले सकते। मैंने यह समझ लिया कि तुम बुद्धिमान् हो, पर वह तुमसे भी बढ़कर बुद्धिमान् है, इसलिए तुम और कोई जाल फैलाओ। इससे तुम्हारा काम नहीं चलेगा।

पहले तो राखाल कुछ देर तक हरिदयालके मुँहकी ओर देखता रहा; फिर मुस्कराकर बोला—खैर, देखा जायगा। यह बात तो मै समझ लूँगा। मै अपनी ओरसे यत्न करूँगा। फिर भी यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति—

हरिदयालने उसे चटपट बीचमे ही रोककर कहा—ठहरो भाई, देव-भाषाको और अधिक अपवित्र न करो।

राखालने सप्रतिभ होकर कहा—जो आज्ञा। पर अब मैं अधिक ठहर नहीं सकता। आप मुझे उनका पता बतला दीजिए।

हरिदयालने कहा—भाई, पता तो तुम उसी सुलोचनासे पूछ सकते हो।

रा०—वह तो नहीं बतलावेगी, पर हाँ, आप बतला देंगे।

हरि०—यदि मैं भी न बतलाऊँ तो ?

राखालने शान्त भावसे कहा—नहीं, आप जरूर बतला देंगे। और फिर यह तो मै पहले ही कह चुका हूँ कि यदि आप न बतलावेंगे, तो मै क्या करूँगा।

हरिदयालका मुंह सूख गया। उन्होंने कहा—भाई, मैने तो तुम्हारा कुछ भी नहीं किया।

राखालने कहा—नहीं, आपने तो मेरा कुछ भी नहीं किया। इसी वास्ते न मै अब एक काम करनेके लिए कहता हू। यदि आप मुझे नाम धाम बतला देंगे, तो मै भी जाकर दामादको दो चार आशीर्वाद-वचन सुना आऊँगा और लड़कीको भी एक बार देख आऊँगा। बहुत दिनोसे उसे देखा नहीं है।

हरिदयाल सचमुच मनमे डर गए थे, परन्तु ऊपरसे उन्होंने साहस दिखलाते हुए कहा—मैं तुम्हारी सहायता नहीं करूँगा। तुम्हारी जो इच्छा हो, वह तुम करो। मुझसे अनजानमे एक पाप हो गया। उसके लिए न होगा तो मैं प्रायश्चित्त कर दूँगा। और मुझे किस बातका डर है।

रा०—यदि आपको किसी बातका डर नही है, तो फिर मै आज ही सब पण्डोंके यहाँ जाकर यह बात कह आऊँगा। तब फिर जहाँ तक हो सकेगा, पता लगाकर सुलोचनाके दामादके पास जाऊँगा और वहाँ भी सबसे यह बात कह आऊँगा। अच्छा पण्डाजी, नमस्कार! अब मै जाता हूँ।

जब वह सचमुच उठकर चलने लगा, तब हरिदयालने उसका हाथ पकड कर फिर बैठा लिया और धीरेसे कहा—भाई मैने समझ लिया कि तुम सहजमे जान छोड़नेवाले असामी नहीं हो। अच्छा, तुम नाराज मत हो। हमारी बात सुनो। अभी तो तुम इस बातको

यहीं तक रहने दो, आगे मत बढाओ। फिर पॉच सात दिन बाद आना। तब जो होगा, वह देखा जायगा।

रा० —पर यह याद रखिएगा कि उस दिन फिर इसी तरहसे लौटा देनेसे काम नहीं चलेगा।

हरिदयालने तीव्र दृष्टिसे राखालकी ओर देखते हुए कहा—क्यों भाई, क्या तुम सचमुच ब्राह्मण-सन्तान हो ?

रा०—जी हॉ।

हरिदयालने ठण्ढी सॉस लेते हुए कहा—आश्चर्य है ! अच्छा, सात आठ दिन बाद फिर आना। पर इस बीचमे और किसीसे यह बात न कहना। समझ गए न ?

राखाल "जी हॉ" कहकर वहॉसे चल पड़ा। दो चार कदम आगे बढकर फिर लौट आया और कहने लगा—अच्छी बात है। लेकिन दो रुपए तो मुझे दीजिए। मै अपना मनी-बेग न जाने कहॉ गिरा आया।

यह कहकर राखाल दॉत निकालकर हॅसने लगा।

हरिदयाल मारे क्रोधके उसके मुँहकी ओर देखना भी नहीं चाहते थे। उन्होंने चुपचाप दो रुपए निकालकर उसके हाथ पर रख दिए और वह कमरमे खोसता हुआ वहॉसे चल पड़ा।

राखाल तो चला गया, पर हरिदयाल बहुत देर तक चुपचाप वहीं बैठे रहे। उन्हे सारे शरीरमें ऐसी जलन जान पड़ती थी कि मानों हजारो बिच्छुओने एक साथ डक मारा हो।

सातवाँ परिच्छेद ।

पर सुलोचना कहाँ है ? आज तीन दिनसे हरिदयाल खाना, पीना, सोना, पूजा-पाठ, यात्रियोंका अनुसन्धान सब कुछ छोड़कर सारा बनारस छान आए, पर उन्हें कहीं सुलोचनाका पता न लगा। अन्तमें लाचार होकर वे घर लौट आए और अपना माथा ठोंककर कहने लगे—हे विश्वेश्वर ! यह कैसा दुर्भाग्य है ! म तो एक अनाथा पर दया करने चला था, पर उसके कारण अन्तमे मैंने कैसा पाप संचित किया !

गलीके कोने पर कैलास चाचाका मकान था। हरिदयालने वहाँ जाकर देखा तो कोई नहीं था। उन्होंने पुकारा—चाचाजी, घरमे हो ?

जब किसीने कोई उत्तर नहीं दिया, तब हरिदयाल अन्दर चले गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि कैलास एक दीपकके प्रकाशमें अपने सामने शतरंज बिछाकर अकेले बैठे हुए हैं। उन्होंने कहा—चाचाजी, क्या अकेले ही शतरंज खेल रहे हो ?

कैलासने उनकी ओर देखकर कहा—आओ भाई, जरा यह चाल तो बचाओ।

हरिदयालने विरक्त होकर मन ही मन उन्हें कुछ बुरा भला कहते हुए कहा—यहाँ तो अपनी जाति बचती दिखाई नहीं देती और ये कहते है कि शतरजकी चाल बचाओ।

कैलासके कानमें आधी बात तो पहुँची और आधी नहीं पहुँची। उन्होंने पूछा—क्या कहा ?

हरि०—उस दिनका सब हाल तुमने सुना ?

कैला०—कौनसा हाल ?

हरि०—उसी दिनका, जिस दिन हमारे घरमें वह झगड़ा बखेड़ा हो रहा था।

कैला०—नहीं भाई, मैंने पूरी तरहसे नहीं सुना। जान पड़ता है कि वह झगड़ा बहुत धीरे धीरे हो रहा था। लेकिन उस दिन तुम्हारी बाजी खूब दबी थी।

हरिदयालने मन ही मन खिजलाते हुए कहा—हाँ, बाजी तो खूब दबाई थी, पर उस दिनकी बात भी कुछ सुनी थी ?

कैलासने कुछ देर तक सोचकर कहा—नहीं, मैंने तो प्रायः कुछ भी नहीं सुना था। भला ज इतने धीरे धीरे बात चीत हो रही थी, तब मै कैसे सुन सकता। पर याद है, उस दिन खेल कैसा जमा था ? तुम अपना वजीर तो किसी तरह बचा ही नहीं सकते थे। देखो, यही तो खेल था। जरा इसे बचाओ तो, देखूँ, कैसे बचाते !

हरिदयालने विरक्त होकर कहा—वजीर जाय चूल्हेमें ! मैं यह पूछता हूँ कि उस दिनकी कोई बात तुमने नहीं सुनी ?

कैलासने हरिदयालके विरक्त मुखकी ओर एक बार देखकर कुछ अप्रतिभ होकर कहा—क्या जानूँ भाई, मुझे तो कुछ याद नहीं आता।

हरिदयालने कुछ देर तक चुप रहकर गम्भीर भावसे कहा—अच्छा, संसारका और कोई काम करो या न करो, पर परलोकको तो मानते हो ?

कैला०—हाँ, मानता क्यो नहीं।

हरि०—तो फिर तुमने परलोकके लिए कोई काम भी किया है ? कभी एक दिनके लिए भी मन्दिर गए हो ?

कैलासने कुछ विस्मित होकर कहा—वाह, यह कैसी बात कहते हो! क्या मैं कभी मन्दिरमे नहीं गया? कई बार गया हूँ।

हरिदयालने गम्भीर होकर कहना आरम्भ किया—तुम्हे बीस बरस काशीमें रहते हो गए, पर जान पड़ता है कि तुमने बीस दिन भी किसी देवताके दर्शन नहीं किए, पूजा पाठ तो बहुत दूरकी बात है।

कैलासने उनका प्रतिवाद करते हुए कहा—अजी नहीं, बीस दिनसे ज्यादा दर्शन करनेके लिए गया होऊँगा। पर भाई, तुम्हें क्या खबर! मुझे बिल्कुल समय नहीं मिलता, इसी लिए पूजा पाठ कुछ भी नहीं हो सकता। देखो न, सवेरा होते ही शम्भू मिश्रसे एक बाजी खेलनी पड़ती है। वे खेलते खूब है। बस एक बाजी खेलते ही दोपहरका समय हो जाता है। इसके उपरान्त नहा धोकर नित्य कृत्य करके भोजन बनाता हूँ। भोजन करते करते सन्ध्या हो जाती है। और फिरमें क्या कहूँ, गगा पाँडे—चाहे जो कहो, पर उसका खेल भी तारीफ ही करनेके लायक होता है। उस दिन तो उसने मुझे प्रायः मात ही कर दिया था। एक तरफसे घोड़ा और दूसरी तरफसे हाथी लेकर बिलकुल दबाता ही चला आया। मैने तो समझा कि—

हरि०—अजी जाने भी दो। यह बतलाओ कि दोपहरके समय तुम क्या करते हो।

कैला०—दोपहरके समय गगा पाँड़ेके साथ, उसके दोनो हाथी—बस इसी समय देखो न—

हरिदयालने बहुत ही विरक्त होकर कैलासको बीचमें ही रोकते हुए कहा—बस रहने दो, रहने दो। दोपहरको गगा पाँड़े और सन्ध्याको मुकुन्द घोषकी बैठकमें। बस फिर तुम्हें समय मिले कहाँसे?

कैलास चुप रह गए। हरिदयालने और भी अधिक गम्भीर होकर उपदेश देना आरम्भ किया—पर चाचाजी, अब दिन भी तो बहुत

अधिक नहीं रह गए है । अब तुम्हें परलोकके लिए भी तैयार हो जाना चाहिए और उसकी भी थोडी बहुत चिन्ता करनी चाहिए । तुम वहाँ शतरजके मोहरे तो अपने साथ ले जा सकोगे ही नही ।

कैलास सहसा ठठाकर हँस पडे । उन्होंने कहा—नहीं जी, जान पडता है कि शतरजके मोहरे मै अपने साथ न ले जा सकूँगा । और जो तुमने मुझे तैयार होनेके लिए कहा, सो मै तैयार तो हूँ ही । बस जिस दिन बुलाहट आवेगी, उसी दिन यह सब किसीको देकर साधा चल पडूँगा । इसके लिए भला इतनी चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है ?

हरि०—चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ? तुम्हे किसी प्रकारकी आशका नहीं होती ?

कैला०—बिलकुल नहीं, भाई, जरा भी नही । जिस दिन मेरा कमल चला गया, जिस दिन कमलचरणने मेरे मुँहकी ओर देखते देखते आँखें बन्द कीं, उसी दिन आशका, भय आदि सभी उपद्रव उसीके पीछे पीछे चले गए । एक दिनके लिए भी मुझे यह न माळूम हुआ कि वे सब उपद्रव किस प्रकार चले गए ।

इतना कहते कहते उस वृद्धकी दोनो आँखे छलछला आईं ।

हरिदयालने कहा—अच्छा, अब इन सब बातोको जाने दो । मेरी एक बात सुनोगे ?

कैला०—हाँ, कहो

हरिदयालने उस दिनकी सब बातें एक एक करके उनको कह सुनाईं और अन्तमें पूछा—अब इसका क्या उपाय किया जाय ?

कैलास सदा प्रसन्न रहा करते थे । पर ये सब बाते सुनते सुनते उनकी वह प्रसन्नता जाती रही और उनका चेहरा पीला पड गया ।

उन्होंने कातर स्वरसे कहा–हरिदयाल, ऐसा नहीं हो सकता । सुलोचना सती सावित्री थी ।

हरि०—पहले मै भी ऐसा ही समझता था, पर स्त्रियोंके लिए सब कुछ करना सम्भव है ।

कैला०—छी ! ऐसी बात मुँहसे न निकालो । मनुष्य मात्र पुण्य–पाप किया करते है । इसमे स्त्री और पुरुषका कोई भेद ही मुझे नहीं दिखाई देता । क्या तुम्हें अपनी मॉकी बातें याद नहीं है ? क्या उन सब बातोंको तुमने एक दमसे भुला दिया ?

हरिदयाल कुछ तो लज्जित और कुछ विरक्त हुए । पहले तो कुछ देर तक वे सिर झुकाए रहे, फिर उन्होंने कहा—परन्तु अब जो जाति जा रही है, इसका क्या किया जाय ?

कलासने कहा—एक प्रायश्चित्त कर डालो । अनजानमे यदि कोई पाप हो जाय, तो क्या उसके लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है ?

हरि०—प्रायश्चित्त तो है, पर यहाँके लोग जो हमे जातिसे बाहर कर देंगे ?

कैला०—कर दे, फिर—

हरिदयालने बहुत अधिक क्रुद्ध होकर कहा—क्या कहा ? कर दें ! चाचाजी, जरा समझ बूझकर बात करो ।

कैला०—हाँ, हॉ, मै समझ बूझकर ही बात कर रहा हूँ । अब तुम्हारी अवस्था भी तो कम नहीं है । मै समझता हूँ कि पचासके पार पहुँच चले होगे । इतने दिनों तक तो तुम जातिमें थे ही, बाकी दो चार बरस नहीं रहे, तो इसमें कौन बहुत बड़ी हानि हो जायगी ?

हरि०—इसमें कोई हानि ही नहीं है ? जब जात चली जायगी, धर्म चला जायगा, तब ईश्वरके सामने मै क्या उत्तर दूँगा ?

कैला०—बस यही उत्तर दे देना कि मैने एक अनाथाको आश्रय दिया था।

हरिदयाल चुप होकर कुछ सोचने लगे। यह बात उनके मनमें बिलकुल न बैठती थी। कुछ देर बाद उन्होने कहा—तो फिर मैं उसे सुलोचनाके दामादका पता न बतलाऊँ?

कैला०—नहीं, कदापि न बतलाना। वह बदमाश और शराबी है। वह डरा धमकाकर तुमसे रुपया वसूल करना चाहेगा और फिर एक भले आदमीके लड़केसे भी वसूल करेगा। तो क्या इस काममें तुम उसकी सहायता करोगे?

हरि०—पर यदि मै उसकी सहायता न करूँगा, तो मेरा तो सर्व-नाश हो जायगा। मेरे यहाँ तो फिर एक भी यजमान न आवेगा। मैं खाने किसके घर जाऊँगा?

कैलासने कहा—नहीं, तुम इस बातकी चिन्ता मत करो। मै सर-कार बहादुरकी कृपासे बीस रुपया महीना पेन्शन पाता हूँ। तुम मेरे भतीजे हो। बस, इतनेम हम दोनोका काम चल जायगा। हम लोग खायँगे और शतरज खेलेगे, और घरसे कहीं बाहर निकलेंगे ही नहीं।

बहुत दुःखी होने पर भी कैलासके मुँहसे इस प्रकार लड़केकी सी बाते सुनकर हरिदयाल हँस पड़े। उन्होने कहा—चाचाजी, तुम मेरा बोझ अपने ऊपर क्यों लोगे? और मैं ही क्यो किसी दूसरेकी बला अपने सिर लेकर अपनी जाति गँवाऊँगा? इससे अच्छा तो—

कैलासने कहा—हाँ, ठीक तो है। इससे अच्छा तो यही है कि उसका नाम पता सब बतला दिया जाय और एक दरिद्र बालिकाको उसके पति, गृहस्थी और सम्मान आदि सब बातोंसे वंचित करके इन पुरानी हड्डियोंको गीदड़ों और कुत्तोंका ग्रास होनेसे बचा लिया जाय।

अच्छी बात है, भाई, बचा लो। पर तुम मुझसे इस विषयमे बात करने आए, यह तुमने अच्छा नहीं किया। पर जब तुम मुझसे परामर्श करने ही आए हो, तो फिर मेरी एक बात और सुन लो। यह काशी-धाम है, यहाँ माता अन्नपूर्णाका राज्य है। यदि यहाँ रहकर तुम उनकी सती बालिकाओंके पीछे पडोगे, तो यह कोई अच्छा काम नहीं करोगे।

हरिदयालने क्रुद्ध होकर कहा—तो क्या चाचाजी, तुम मुझे शाप दे रहे हो?

कैला०—नहीं। तुम तो काशीके पडे हो। स्वयं बाबा विश्वनाथके वाहन हो। हम लोगोका शाप तुम्हे नहीं लगेगा। तुम इस बातसे मत डरो। पर भाई, जिस काममे तुम हाथ डाल रहे हो, वह बहुत निरापद नही है। सती सावित्रीसे यमराजको भी भय लगता है। बस म तुम्हे इसी बातका स्मरण दिला देता हू। हम लोग बहुत दिनों तक एक साथ शतरज खेलते रहे है, इसके अतिरिक्त मै तुमसे प्रेम भी करता हूँ, इसी लिए इतनी बात कहे देता हू।

हरिदयालने इस बातका कोई उत्तर नही दिया। वे उदासमुख होकर वहाँसे उठ खडे हुए।

कैलासने कहा—तो फिर क्या तुम मेरी बात नही मानोगे?

हरि०—पागलकी बात माननेके लिए आप भी पागल होना पड़ेगा।

अब कैलास चुप हो गए और हरिदयाल घरसे बाहर निकल आए।

कैलासने शतरजके मोहरे उठाकर उनकी पोटली बाँधते बाँधते मनमें सोचा-- जान पड़ता है, इसीका कहना ठीक है; मेरे परामर्शसे तो शायद सचमुच ससारका काम नहीं चल सकता। जब कोई मर जाता है और आदमी नहीं मिलते, तब कभी कभी लोग मुझे बुलाने आ जाते है और तब दाहकर्म करना पड़ता है। जब कोई बीमार पड़ता

है, तब भी लोग बुलाने आते हैं। उस समय जाकर रोगीकी सेवा शुश्रूषा करनी पडती है । इसके सिवाय कुछ लोग शतरज खेलने भी आ जाते है। पर मेरी इतनी उमर हो गई, आज तक कभी कोई मुझसे परामर्श करने तो नहीं आया ।

परन्तु बहुत रात तक सोचते रहने पर भी कैलास अपने मनमें कुछ भी स्थिर न कर सके । उनकी समझमे न आया कि सूर्यके प्रकाशके समान उज्ज्वल और स्फटिकके समान स्वच्छ बात लोगोके लिए क्यो ग्राह्य नहीं होती ! ऐसी सहज और प्राजल भाषा ससारके लोग क्यो नही समझ सकते !

बहुत कुछ सोच विचार करनेके उपरान्त उसी रातको हरिदयालने चन्द्रनाथके चाचा मणिशकरको इस आशयका एक पत्र लिख दिया कि चन्द्रनाथ अपनी इच्छासे एक वेश्याकी कन्यासे विवाह करके उसे अपने साथ घर ले गए है ।

आठवाँ परिच्छेद ।

हरिदयालने सब बात खोलकर मणिशंकरको लिख दी थीं, इसी लिए उन्हे सहजमें ही विश्वास हो गया कि यह समाचार मिथ्या नहीं है । पर उनकी समझमें यह बात नहीं आई कि इस समय करना क्या चाहिए । चाहे यह समाचार उनके लिए सुखकर हो और चाहे दुःखकर, पर इसमे सन्देह नहीं कि यह थी बहुत बड़ी बात । उन्हें अकेले इतना बड़ा भार उठानेमें कुछ क्लेश जान पड़ा, इस लिए उन्होंने थोड़ेमें सब बातें अपनी स्त्रीको बतला कर कहा—यदि वह मुझसे परामर्श लेता, तो कभी ऐसी बात हो सकती थी ? या मैं कभी इतनी बड़ी धोखेबाजी होने देता ? जो हो, पर अभी यह बात किसी पर प्रकट नहीं करनी चाहिए । पहले खूब अच्छी तरह सोच लेना चाहिए ।

परन्तु किसी बातको अच्छी तरह सोचनेमें कुछ समय लगता है, दो चार दिन ठहरना पड़ता है । और स्त्रियोंसे यह बात हो ही नहीं सकती । इसी लिए हरिदयालने अपने पत्रम जो कुछ लिखा था, उसका आशय पहले दो चार कानोंमें गया और फिर धीरे धीरे उस बातको जाननेवालोंकी सख्या बढ़ने लगी । जिस दिन मणिशंकरकी लड़कीको देखनेके लिए उसके ससुरालवाले आए थे, उसी दिन यह बात हरिबालाके कानोंमें भी पड़ी थी, इसी लिए वह डरती डरती इस बातका पता लगानेके लिए आई थी कि चन्द्रनाथ सरयूको कितना चाहते हैं । उस दिन स्त्रियोंमें धीरे धीरे पर बड़े उत्साहके साथ इस प्रश्नकी बहुत अधिक आलोचना हुई थी; क्यो कि उन लोगोने पहले ही समझ लिया

था कि सरयूके प्रति चन्द्रनाथके प्रेमकी मात्रापर ही सरयूका भविष्यत् निर्भर करता है।

सभी लोग दबी जबानसे बातें करते थे, सभीकी आकृति और आँखोंसे प्रकट होता था कि इनके कोमल हृदयोंमे एक प्रकारका पैशाचिक आनन्दका प्रवाह उमड़ रहा है। सभी लोग दुःख प्रकट करते है और सभी लोग ठण्ढी साँस लेते हैं, पर सभी लोगोंके मनमें गुप्त रूपसे यह इच्छा छिपी हुई है कि सरयूके भाग्यदेवता चाहे जिस ओर मुँह फेरें, वे लोग दु'खके साथ एक बार 'हाय' कहेगे। वे लोग उसी परम दुःखका चित्र बड़े यत्नसे और बड़ी निपुणताके साथ एक दूसरेके चित्त पर दृढताके साथ अकित करनेका प्रयत्न कर रहे थे। आज दो दिनसे मारे उत्कण्ठाके उन लोगोंको नींद नहीं आती थी। धीरे धीरे एक सप्ताह बीत गया। अभी तक दिन रात केवल धूआँ ही होता रहता था, आग नहीं जली थी। यह बात केवल स्त्रियोंमें ही बाधा-प्राप्त स्रोतकी भाँति घूम फिरकर आती जाती रहती थी। वे स्त्रियाँ जो बात चाहती थीं, उस बातको गर्वपूर्वक ऊपर उठाकर दोनों किनारोंको तोड़ता हुआ यह प्रवाह तीव्र वेगसे नहीं चल सका था, इसी लिए इन लम्बे चौडे सात दिनोंमें उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिली थी। पुरुषोंमें भी यह बात उठा करती थी, पर बहुत ही थोड़ी देरके लिए उठती थी। उन्हें चन्द्रनाथको जातिसे च्युत करनेके सिवा और भी बहुत से काम थे। उन्हे गृहस्थीका भार ढोना पड़ता था। उन्हें बिलकुल निश्चिन्त होकर बहुत देर तक बैठनेका समय नहीं मिलता था, इसलिए किसी बातकी मीमासा होनेसे पहले ही उनका दल टूट जाता था, सब लोग इधर उधर हो जाते थे। तो भी यदि कोई छोटी मोटी बात होती, चन्द्रनाथ गरीब होते तो शायद जैसे

तैसे इस बातकी मीमांसा हो भी जाती। किन्तु ऐसे अवसर पर किसीको इस बातका साहस ही न होता था कि प्रकट रूपसे दल बनाकर और आप उसका दलपति होकर चन्द्रनाथके विरुद्ध खड़ा होता। यदि कोई ऐसा कर सकता था, तो मणिशंकर ही। पर न जाने क्यों, वे कभी इस सम्बन्धकी कोई बात उठाते ही न थे। अब लाचार होकर पास पड़ोसकी बडी बूढ़ी विधवाओंने ही इस कर्तव्य कर्मकी ओर ध्यान दिया। उन्होंने निरपराध व्रजकिशोर और उनकी स्त्री हरकालीका धर्म और जाति बचानेकी पवित्र कामनासे बड़े ही दु:खके साथ यह बात प्रकट कर दी कि अवश्य ही इस बातका प्रमाण मिल गया है कि सरयूकी माँ काशीकी एक वेश्या है, इसलिए उस वेश्याकी कन्याका छूआ हुआ खाने-पीनेसे तुम स्त्री और पुरुष दोनोंकी जाति भी गई और धर्म भी नष्ट हुआ!

पहले तो हरकाली बिलकुल सकपकाकर देखती रही, फिर उसने पूछा क्या हुआ?

राममयकी वृद्धा माताने लम्बी साँस लेकर कहा—अरे हुआ और क्या! जो होना था, वही हुआ! सर्वनाश हो गया!

इतना कहकर उस बुढ़ियाने आदिसे अन्त तक सारी कहानी और एक बार कह सुनाई। उसके कहनेमें जो थोड़ी बहुत भूल हुई, उसका संशोधन आसपासकी और दो चार स्त्रियोंने कर दिया। अब हरकालीने अच्छी तरह समझ लिया कि पूरी तरह चौका लग गया। फिर भी कुछ तो आप अच्छी तरह समझनेके लिए और कुछ एक और आदमीको अच्छी तरह समझानेके लिए वह वहाँसे चुपचाप उठी और अपने घर आकर एक कोठरीमें पहुँचकर उसका द्वार बन्द करके बैठ गई। जो स्त्रियाँ अपनी ओरसे कुछ काम करनेके लिए आई

थीं, उनकी समझमें यह बात ठीक ठीक न आई कि हमने यह अच्छा काम किया या बुरा, इस लिए वे सब कुछ चिन्तित होकर एक एक करके वहाँसे खिसक गई। हरकाली जब अकेली कोठरीमें बैठी, तब उसे इस बातकी आशंका होने लगी कि मेरे इस जले हुए करममें ऐसा बढ़िया समाचार अन्त तक ठीक ठहरेगा या नहीं। फिर उसने सोचा कि यदि यह बात पूरी पूरी ठीक न उतरी, तो फिर मेरे पास इसका और उपाय ही क्या है। पर हाँ, यदि मेरा भाग्य इस समय बिलकुल अनुकूल होगा, यदि इतने दिनोंके उपरान्त सचमुच मुझ पर भगवानकी कृपा होनेको होगी, तो फिर मेरी भानूजी तो अभी तक कुँआरी है हां। अभी तक वह किसी दूसरेके हाथ नहीं पड़ी है। बस अब यही उसके लिए ठीक समय है। अब उसे इस बातका तनिक भी सन्देह नहीं रह गया कि चाहे जो हो, अन्त तक मुझे इस विषयमे प्राणपणसे चेष्टा करनी ही पड़ेगी। यह सब सोचकर वह उस स्थान पर जाकर बैठ गई, जहाँ चन्द्रनाथ लिखा पढा करते थे।

हरकालीके चेहरे पर एक भयंकर भाव देखकर चन्द्रनाथ कुछ चिन्तित हुए। उन्होने पूछा—मामी, क्या है?

हरकालीने अपना माथा ठोककर और रोनी सूरत बनाकर कहा—बेटा चन्द्रनाथ, हम लोग दुःखी दरिद्री हैं, क्या इसी लिए हम लोगोंको यह दण्ड दिया गया है?

चन्द्रनाथकी समझमे कुछ भी न आया। बहुत कुछ सोचने पर भी वे यह न जान सके कि मुझसे क्या हो गया।

हरकालीने फिर कहना आरम्भ किया—अब और बाकी ही क्या रह गया! मुट्ठी भर भातके लिए जाति भी गई और धर्म भी गया। बेटा, यदि हम लोगोंके पास खानेको होता तो क्या तुम इस तरह हम लोगोंका सर्वनाश कर सकते!

चन्द्रनाथने कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त बहुत ही शान्त भावसे पूछा—क्या हुआ ?

हरकालीने आँचलसे झूठ मूठ आँसू पोंछते हुए कहा—इस जले हुए भाग्यमें जो कुछ लिखा था, वही हुआ। और क्या हुआ ! अरे मेरे राजा बेटा, तुम्हें उन डाकिनियोंने लुभाकर यह उपद्रव खड़ा किया !

चन्द्र०—मामी, मै तुम्हारे पैरो पड़ता हूँ, तुम बात खोलकर कहो।

हर०—अब मै तुमसे क्या कहूँ, तुम अपने चाचाजीसे जाकर पूछो।

चन्द्रनाथ कुछ खिझला गए। उन्होने कहा—यदि मुझे चाचाजीसे पूछना पड़ेगा, तो फिर तुम इस प्रकारकी बाते क्यों कर रही हो ?

हर०—बेटा, हम लोगोंका तो सर्वनाश हो गया, इसी लिए मैं ऐसी बाते कर रही हूँ, और क्यो कर रही हूँ !

चन्द्रनाथ अपने मामा और मामी पर यथेष्ट श्रद्धा भक्ति रखते थे, परन्तु इस प्रकारके व्यवहारसे मनुष्य दु:खी हो ही जाता है, इस लिए वे भी बहुत दुःखी हुए। उन्होंने और भी खिझलाकर कहा—यदि तुम लोगोका सर्वनाश होता हो, तो तुम लोग और किसीके घर जा रहो। हमारे सामने इस तरहकी बातें मत करो।

हरकालीने चन्द्रनाथकी माताका नाम लेकर जोर जोरसे रोना आरम्भ किया और कहा—अरे तुम तो हम लोगोंको बुलाकर यहाँ लाई थीं, और तुम्हारा लड़का हमें घरसे निकाल रहा है।

चन्द्रनाथने बहुत ही व्याकुल होकर मामीका हाथ पकड़कर दबाते हुए कहा—मामी, जब तक तुम खुलकर कोई बात न कहोगी, तब तक मैं कैसे समझ सकता हूँ कि कैसे तुम लोगोका सर्वनाश हुआ। तुम तो खाली 'सर्वनाश सर्वनाश' कर गईं और अब तक एक भी बात तुम्हारे मुँहसे न निकली।

हरकालीने फिर एक बार आँसू पोंछते हुए कहा—क्यों बेटा, क्या तुम कुछ भी नहीं जानते ?

चन्द्र०—नहीं ।

हर०—तुम्हारे चाचाजीके पास काशीसे तुम्हारे पण्डेने एक चिट्ठी भेजी है ।

चन्द्र०—उसमे क्या लिखा है ?

हरकालीने थूक घोटकर और सिर झुकाकर कहा--बेटा, काशीमें तुम्हे अकेले पाकर डाकिनीने तुम्हें फँसाकर वेश्याके साथ तुम्हारा ब्याह करा दिया ।

चन्द्रनाथने ऑखे फाडकर पूछा—क्या कहा ? किसका ब्याह करा दिया ?

हरकालीने सिर पर हाथ मारकर कहा—तुम्हारा ।

चन्द्रनाथने मामीके पास खिसककर धीरेसे पूछा—वेश्याके साथ किसका ब्याह हुआ है ? मेरा ?

हर०—हॉ, तुम्हारा ।

चन्द्र०—इसका क्या अर्थ ? क्या ब्याह होनेसे पहले सरयू वेश्या-वृत्ति करती थी ? मामी, क्या तुम्हें यह याद नहीं है कि जब वह दस ही बरसकी थी, तभी तुम्हारे घर आई थी ?

हर०—बेटा, यह तो मै कुछ नहीं जानती । पर हॉ, काशीमें उसकी मॉ बहुत बदनाम है ।

चन्द्र०—तो फिर यो कहो कि उसकी मॉ वेश्यावृत्ति करती थी । वह स्वय तो वेश्या नहीं थी न ?

हरकालीने मन ही मन कुछ उद्विग्न होकर कहा—बेटा, वह एक ही बात है, दो नहीं है ।

चन्द्रनाथने कड़ककर कहा—मामी, तुम ये कैसी बातें कर रही हो ? क्या तुम पागल हो गई हो ?

घुड़की सुनकर हरकाली रोती हुई बोली—बेटा, यह बात ही पागल हो जानेकी है। हम दोनो आदमियोको प्रायश्चित्त करा दो। फिर जिधर हम लोगोंका मुँह उठेगा, हम लोग उधर ही चले जायँगे। इससे अच्छा तो भीख माँगकर खाना है।

चन्द्रनाथने भी क्रोधमे आकर कहा—हाँ, वही अच्छा है।

हर०—तो फिर हम लोग चले जायँ ?

चन्द्रनाथने मुँह फेरकर कहा—हाँ, जाओ।

उस समय हरकालीने फिर अपने सिर पर इस प्रकार हाथ मारा जिससे कुछ शब्द भी हुआ। वह बोली—हाय रे हमारा अभाग्य ! अन्तमे हमारे भाग्यमें यही लिखा था।

चन्द्रनाथने मुँह फेरकर गम्भीरतापूर्वक कहा—पर फिर भी तुम साफ साफ बात नही कहोगी न ?

हर०—सब तो कह रही हूँ।

चन्द्र०—तुमने तो कुछ भी साफ साफ नहीं कहा। वह चिट्ठी कहाँ है ?

हर०—तुम्हारे चाचाके पास है।

चन्द्र०—उसमें क्या लिखा है ?

हर०—वही तो बतला रही हूँ।

चन्द्रनाथ एक चौकी पर बैठ गए। गम्भीर लज्जा और घृणाके कारण वे सिरसे पैर तक काँप उठे। उनका सारा शरीर मानों सज्ञा-शून्य होने लगा। उनके मुँहसे केवल इतना ही निकला—छी: !

चन्द्रनाथके मुँहकी ओर देखकर हरकाली मन ही मन कुछ डरी। ऐसा भीषण और कठोर भाव किसीने किसी मृतकके मुखपर भी न देखा होगा। वह चुपचाप वहाँसे उठ गई।

नवाँ परिच्छेद ।

चन्द्रनाथने कहा—वह चिट्ठी कहाँ है ? देखूँ !

मणिशंकरने चुपचाप एक बक्स खोलकर पत्र निकाला और उनके हाथमे दे दिया। चन्द्रनाथने आदिसे अन्त तक दो बार सारा पत्र पढकर सूखे हुए मुँहसे प्रश्न किया—इसका प्रमाण ?

मणि०—राखालदास स्वय ही यहाँ आ रहे हैं।

चन्द्र०—उनकी बातका क्या विश्वास ?

मणि०—यह मै क्या बतला सकता हूँ ! अब जो कुछ तुम्हारी समझमें आवे, वह करो।

चन्द्र०—वे किस लिए यहाँ आ रहे है ? इस बातको प्रमाणित करनेसे उनको क्या लाभ होगा ?

मणि०—उनको इससे क्या लाभ होगा, यह तो इसी पत्रमें लिखा है। वे दो हजार रुपए चाहते है।

चन्द्रनाथने मणिशंकरके चेहरेकी ओर देखते हुए सहज भावसे कहा—यदि यह बात प्रकट न होने पाती, तो वे भय दिखलाकर रुपए वसूल कर सकते थे। पर अब उनकी सारी आशा मिट्टीमें मिल गई। आपने तो एक प्रकारसे मेरा उपकार ही किया है। मेरे इतने रुपए बचा दिए है।

मणिशंकर मारे लज्जाके गड़ गए। उनके मनमें आया कि मै कह दूँ कि मैने यह बात लोगों पर प्रकट नहीं की है। पर तुरन्त ही उन्हें स्मरण हो आया कि मेरे ही द्वारा यह बात प्रकट हुई है। यदि मै

अपनी ऑंसे यह बात न कहता, तो किसीको कानों कान खबर भी न होती। इसी लिए वे सिर झुकाकर बैठे रहे।

चन्द्रनाथने फिर कहा—यह गाँव मेरा है। पर मै आपसे यह नहीं पूछना चाहता कि एक लम्पट भिक्षुक किस साहससे मेरा अपमान करनेके लिए मेरे गाँवमे, मेरे घरमें आ रहा है। पर चाचाजी, मैं एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ। यदि मै मर जाऊँ, तो क्या आप सुखी होंगे ?

मणिशकरने दाँतोंसे जीभ काटते हुए कहा—छीः छीः! चन्द्रनाथ, तुम ऐसी बात कभी जबान पर भी मत लाना।

चन्द्रनाथने कहा—नहीं, अब फिर कभी ऐसी बात जबान पर लानेकी आवश्यकता नहीं होगी। आप मेरे पूजनीय हैं, यदि आज मुझसे कोई अपराध हो जाय, तो आप मुझे क्षमा कीजिएगा। मेरे पास जो कुछ धन सम्पत्ति है, वह सब आप ले ले और सब कुछ लेकर मुझ पर प्रसन्न हों। मै जहाँ रहूँ, वहाँ केवल कुछ थोड़ा बहुत प्रतिमास भेज दिया कीजिएगा। मै ईश्वरकी शपथ खाकर कहता हूँ कि इससे अधिक मै आपसे और कुछ भी नहीं माँगूँगा। किन्तु आप इस प्रकार मेरा सर्वनाश न कीजिएगा।

इतना कहते कहते चन्द्रनाथका गला रुँध गया और उन्होने दाँतोंसे होठोंको दबाते हुए बहुत कठिनतासे आती हुई रुलाई रोकी।

मणिशंकर उठकर खडे हो गए और चन्द्रनाथका दाहिना हाथ जोरसे पकड़कर दबाते हुए रो पड़े। उन्होने कहा—बेटा, चन्द्रनाथ, मेरे स्वर्गीय बडे भाईके वशमे तुम्हीं एक हो। मै तुमसे भिक्षा माँगता हूँ, तुम इस वृद्धका और अधिक तिरस्कार मत करो।

चन्द्रनाथने मुँह फेरकर आँखोसे आँसू पोंछते हुए कहा—चाचाजी, मैं आपका तिरस्कार नही करता। परन्तु इतने बड़े दुर्भाग्यके उपरान्त

देश छोड़कर चले जानेके सिवा मेरे लिए और कोई उपाय ही नहीं है; बस यही बात मै आपसे कह रहा था।

मणिशकरने विस्मयके स्वरमे कहा—क्यों, तुम देश क्यों छोड़ोगे? तुमने अनजानमे इस प्रकार विवाह कर लिया है, इसलिए यह कोई विशेष लज्जाकी बात नहीं है। मैं तो समझता हूँ कि केवल प्रायश्चित्त कर लेना ही यथेष्ट होगा।

चन्द्रनाथ चुप रहे, उन्होने कोई उत्तर नहीं दिया। मणिशंकरने उत्साहित होकर फिर कहा—इसके लिए उपाय बहुत से है। तुम बहूको छोड़कर चुपचाप एक प्रायश्चित्त कर डालो और फिर विवाह करके गृहस्थी चलाओ। बस, इसीसे सबकी रक्षा हो जायगी।

चन्द्रनाथ कॉप उठे।

मणिशंकरने जमाना देखा था, यह बात तुरन्त उनके ध्यानमें आ गई। वे स्थिर दृष्टिसे चन्द्रनाथके मुँहकी ओर देखते रहे।

चन्द्रनाथने कहा—चाचाजी, मै उसे किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता।

मणिशकर बोले—नहीं नहीं, चन्द्रनाथ तुम उसे छोड़ सकोगे। आज विश्राम करो, कल स्थिरचित्त होकर जब इस बात पर विचार करोगे, तब तुम्हें जान पड़ेगा कि यह कोई कठिन बात नहीं है। अब इस बहूको किसी प्रकार घरमे नहीं रखा जा सकता।

चन्द्र०—लेकिन जब तक इस बातका कोई प्रमाण नहीं मिलता, तब तक आप किस प्रकार मुझे उसको छोड़नेकी आज्ञा देते हैं?

वृद्ध मणिशंकरने कुछ देर तक सोचकर कहा—मैं कोई ऐसा उपाय करूँगा जिसमें इस बातके बहुत अधिक प्रमाणित होनेका अवसर ही न आवे। परन्तु तुम्हें भी अन्तमें उसे छोड़ना ही पड़ेगा। बस, जब

तुम उसे छोड़कर प्रायश्चित्त कर डालोगे, तब सारा झगड़ा मिट जायगा ।

चन्द्र०—कौन मिटावेगा ?

मणि०—मैं मिटाऊँगा ।

चन्द्र०—परन्तु बिना कुछ ठीक पता लगाए ही ?

मणि०—यदि तुम्हारी इच्छा हो तो बादमे तुम पता भी लगा लेना । पर मै तुमसे यह बात निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि यह बात झूठ नहीं है ।

चन्द्रनाथ वहाँसे लौट आए और आकर अपने घरमे, एक कमरेमें, किवाड़ बन्द करके खाट पर लेट गए। मणिशकरने कहा था कि सरयूको छोड़ देना पड़ेगा। जिस प्रकार मनुष्य खाट पर सोया हुआ शून्य दृष्टिसे ऊपरकी ओर देखता हुआ आप ही आप बातें करता है, ठीक उसी प्रकार वे बार बार यही बात कहने लगे—"सरयूको छोड़ देना पड़ेगा, वह वेश्याकी कन्या है ।" यह बात उन्होंने कई बार, कई प्रकारसे अपने मुँहसे कही, अपने ही कानोंसे सुनी, परन्तु फिर भी यह बात किसी प्रकार उनके मनमे न बैठी । उन्होंने सरयूको त्याग दिया है, सरयू घरमें नहीं है, वह आँखोंके सामने नहीं है, आँखोकी ओट भी नहीं है, वह अब उनकी नहीं है । वे हजारों चेष्टाएँ करने पर भी अपने मनमें यह बात अच्छी तरह न समझ सके कि वास्तवमें बात क्या है और उसका ठीक स्वरूप क्या है । लेकिन मणिशकर कहते हैं कि यह कोई कठिन कार्य नहीं है । वे यह भी स्थिर न कर सके कि मनुष्यके हृदयमें यह बात समझनेकी शक्ति भी होती है या नहीं कि यह कार्य कठिन है अथवा सहज; किया जा सकता है अथवा नहीं किया जा सकता । वे निर्जीवके समान पड़े रहे और कुछ देरके लिए उन्हें नींद भी आ गई ।

सोए सोए उन्होंने अनेक स्वप्न देखे। उनमेंसे कुछ तो स्पष्ट थे और कुछ अस्पष्ट। उस निद्राकी दशामे मानो उनके सारे शरीरमें एक प्रकारकी व्यथा व्याप रही थी, उस व्यथाका भी उन्होंने अनुभव किया। जब सन्ध्या होनेको आई, तब उनकी नींद खुल गई। वे उठ बैठे। उनकी मानसिक अवस्था उस समय ऐसी हो गई थी जिसमें माया ममताके लिए कोई जगह ही नहीं थी, क्रोध अथवा घृणा करनेकी उनमे सामर्थ्य ही नहीं रह गई थी। एक अव्यक्त और अबोध्य लज्जाका भारी भार उनके सारे शरीर पर पडा हुआ था। उनका मन धीरे धीरे उनके अधिकारसे निकलकर अवनत हुआ जाता था और मानो शरीर और मन दोनों मिट्टीमें मिल जानेका उपक्रम कर रहे थे।

सन्ध्या हो गई थी, इसलिए नौकर दीपक जलाकर लाया था। उसने जाकर वह बन्द द्वार खटखटाया। चन्द्रनाथ चटपट उठ बैठे और किवाड़ खोल कर कमरेमें टहलने लगे। जब आँखों पर दीपकका प्रकाश लगा, तब मानों उनके मोहका आवेग धीरे धीरे आपसे आप कम होने लगा और अब उनके मनमें आप ही आप यह प्रश्न उठा कि क्या यह बात सत्य है? क्या यह बात स्वय सरयूको भी मालूम है? चन्द्रनाथ किसी प्रकार यह विश्वास न कर सके कि सरयूने सब बाते जान बूझकर भी मेरा इस प्रकार सर्वनाश किया है। वे जल्दी जल्दी अपने कमरेमेंसे निकलकर सरयूके सोनेके कमरेमे जा पहुँचे।

सन्ध्या हो चुकी थी, इसलिए सरयू दीपक जलाकर बैठी हुई थी। स्वामीको आते हुए देखकर वह उठ खड़ी हुई। उसके मुखपर भय अथवा उद्वेगका चिह्न मात्र भी नहीं था। ऐसा जान पड़ता था कि उसके शरीरमें एक बूँद भी रक्त नहीं है। चन्द्रनाथने छूटते ही पूछा—तुमने सब कुछ सुना?

सरयूने सिर झुकाकर कहा—हाँ।

चन्द्र०—क्या सब बातें ठीक है?

सर०—हाँ, ठीक है।

चन्द्रनाथने पलग पर बैठकर कहा—तो फिर इतने दिनो तक तुमने ये बातें मुझसे क्यों नहीं कहीं?

सर०—माँने मना कर दिया था, और फिर तुमने भी कभी नहीं पूछा था।

चन्द्र०—मैने तुम्हारी माँके साथ उपकार किया था, उसीका तुम लोगोने यह बदला चुकाया है!

सरयू चुपचाप सिर झुकाकर खडी रही।

चन्द्रनाथने फिर कहना आरम्भ किया—अब मै समझा कि क्यों तुम इतनी भयभीत रहा करती थीं, अब मेरी समझमे आया कि तुम्हें इतना अधिक प्यार करने पर भी क्यो मुझे सुख नहीं मिलता था। आज तककी सब बातें अब खुल गई। मै समझता हूँ कि शायद इसी लिए तुम्हारी माँने भी किसी प्रकार यहाँ आना मजूर नहीं किया था।

सरयूने सिर झुकाकर कहा—हाँ।

क्षण भरमें ही चन्द्रनाथको सारी पुरानी बातें याद हो आई। वह काशीमें रहना, शुद्धमूर्ति सरयूकी विधवा माँ, उसके वही कृतज्ञ सजल दोनो नेत्र, स्नेहपूर्ण और शान्त बाते, सभी उन्हे याद आ गई। उन्होंने सहसा आर्द्र होकर कहा—सरयू, तुम मुझे पूरी तरहसे सब बातें बतला सकती हो?

सर०—हाँ, बतला सकती हूँ। हमारे मामाका घर नवद्वीपके पास है। राखाल भट्टाचार्यका मकान हमारे मामाके मकानके पास ही था। बाल्यावस्थासे ही मेरी माता उसे चाहती थी। एक बार दोनोंके विवा-

हकी बात चीत भी उठी थी, पर उसका वंश नीचा था, इस लिए विवाह नहीं हो सका। मेरे पिताजीका घर हालीशहरमें था । जब मैं तीन बरसकी थी, तब पिताजीका देहान्त हो गया और माता मुझे लेकर फिर नवद्वीप चली आई। इसके उपरान्त जब मैं पाँच बरसकी थी, तब मेरी माँ मुझे लेकर—

चन्द्रनाथने पूछा—तब फिर क्या हुआ ?

सर०—कुछ दिनो तक हम लोग मथुरामे रहे, वृन्दावनमें रहे और तब काशी चले आए। उसी समय राखालने शराब पीना आरम्भ कर दिया। माँके पास कुछ गहने थे, उन्हीं गहनोंके लिए नित्य लड़ाई झगड़ा होने लगा। एक रोज रातके समय वह सब गहने चुराकर भाग गया। उस समय माँके पास एक पैसा भी नहीं बच रहा था। हम लोगोने सात आठ दिन तक भिक्षा माँगकर किसी प्रकार अपना निर्वाह किया। फिर उसके बाद जो कुछ हुआ, वह तुम आप ही जानते हो।

चन्द्रनाथके सारे शरीरमे मानो आग लग गई। वे सरयूके झुके हुए मुखकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखते हुए बोले—छीः छीः ! सरयू, तुमने ऐसी बात की ! तुमने सब कुछ जान बूझकर इस प्रकार मेरा सर्वनाश किया। मै तो कभी स्वप्नमे भी यह बात नहीं सोच सकता था कि तुम इतनी भारी पापिष्ठा हो।

सरयूकी आँखोंसे टप टप आँसू गिरने लगे। वह सिर झुकाए हुए चुपचाप खड़ी रही।

पर चन्द्रनाथ यह नहीं देख सके कि सरयू रो रही है। उन्होंने और भी कठोर होकर पूछा—अच्छा, अब इसका उपाय ?

सरयूने आँसू पोछते हुए धीरेसे कहा—जो तुम बतलाओ।

चन्द्र०—अच्छा, तो फिर मेरे पास आओ।

सरयू पास चली आई । चन्द्रनाथने दृढ़तापूर्वक उसका हाथ पकड़कर कहा—लोग यह कहते है कि मै तुम्हे छोड़ दूँ, परन्तु मुझे इस बातका साहस नहीं होता । अब मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं रह गया—मेरा विश्वास नष्ट हो चुका है ।

बातकी बातमें सरयूके उतरे हुए पीले चेहरे पर एक प्रकारकी लाली दौड़ गई । ऑसुओसे भरी हुई और मलिन ऑखे क्षण भरमें चमक उठीं । उसने पूछा—तुम्हें मेरा विश्वास नही है ?

चन्द्र०—नहीं, बिल्कुल नहीं । तुम सब कुछ कर सकती हो ।

सरयूने अपने स्वामीक मुँहके पास अपना मुह लाकर अविचलित स्वरस कहा—यह तो तुम भी जानते हो कि तुम मेरे कौन हो। एक दिन तुमने मुझसे कहा था कि मेरे मुँहकी ओर देखो । आज तुम एक बार मेरे मुँहकी ओर देखो । अच्छा, लो मैं अब उपाय बतलाती हूँ । सुनोगे ?

चन्द्र०—हाँ, सुनूँगा । बतलाओ, क्या उपाय है ?

सरयूने कहा—यदि मै जहर खा लूँ तो इसका उपाय हो सकेगा।

चन्द्रनाथ जिस मुट्ठीम सरयूका हाथ थामे हुए थे, वह मुट्ठी और भी दृढ हो गई । मानों उन्हे इस बातका भय हो रहा था कि सरयू कहीं भाग न जाय। उन्होने कहा—हॉ, यह उपाय हो सकता है। बतलाओ, तुम विष खा सकोगी ?

सर०—हाँ, खा सकूँगी ।

चन्द्र०—खूब सावधानीसे ? खूब छिपाकर ?

सर०—हाँ, ऐसा ही होगा ।

चन्द्र०—आज ही ।

सरयूने कहा—अच्छा, आज ही सही ।

जब सरयूने देखा कि स्वामी उठकर चलना चाहते हैं, तब उसने उनके दोनो पैर पकड़कर कहा—तुमने मुझे एक आशीर्वाद भी न दिया ।

चन्द्रनाथने ऊपरकी ओर देखकर कहा—अभी नहीं। जब तुम मर जाओगी, जब तुम्हारा मृत शरीर जलकर राख हो जायगा, तब आशीर्वाद दूँगा ।

सरयूने पैर छोड़कर कहा—अच्छा, ऐसा ही सही ।

अब फिर चन्द्रनाथ उठकर चलने लगे । सरयू उठकर दरवाजेके पास पहुँच गई और किवाड़मे पीठ लगाकर और मार्ग रोककर कहने लगी—यदि मै विष खाऊँगी तो तुम पर तो कोई आपत्ति नहीं आवेगी न ?

चन्द्र०—बिलकुल नहीं ।

सर०—कोई किसी प्रकारका सन्देह तो नहीं करेगा न ?

चन्द्र०—सन्देह तो लोग अवश्य ही करेंगे, पर मैं रुपए देकर लोगोके मुँह बन्द कर दूँगा ।

सर०—मै अपने बिछौनेके नीचे एक चिट्ठी लिखकर रख जाऊँगी । तुम वही चिट्ठी सब लोगोंको दिखला देना ।

चन्द्रनाथने पास आकर सरयूके सिर पर हाथ रखकर कहा—अच्छा, ऐसा ही करना । चिट्ठी अच्छी तरह लिखना और उसके नीचे अपना नाम स्पष्ट अक्षरोंमें लिख देना, जिसमे कोई यह न समझे कि मैने तुम्हारा खून किया है । हाँ, एक बात और है । तुम अन्दरसे किवाड़े और खिड़कियाँ खूब अच्छी तरह बन्द कर लेना, जिसमें जरा भी कोई शब्द बाहर न आने पावे, जिसमें मुझे न सुनाई पड़े—।

सरयू दरवाजा छोड़कर हट गई और उसने जमीन पर सिर रख कर फिर एक बार स्वामीको प्रणाम किया, उनके पैरोंकी धूल अपने माथे पर लगाई और खड़ी होकर कहा—अच्छा, अब जाओ—।

इतना कहते ही उसके मनमें न जाने क्या सन्देह उत्पन्न हुआ। उसने उनका हाथ पकड़कर कहा—नहीं, जरा सा और ठहर जाओ।

सरयू हट जाकर दीपक उठा लाई। दीपक अपने स्वामीके मुखके पास ले जाकर उसने उनका चेहरा देखा और वह चौंक उठी। उस समय चन्द्रनाथकी दोनों आँखोंमें एक प्रकारकी अमानुषिक ज्योति निकल रही थी। उनकी आँखें पागलोंकी आँखोके समान हो रही थीं।

चन्द्रनाथने पूछा—सरयू, तुम मेरी आँखोकी ओर क्या देख रही हो? सरयूने थोड़ी देर तक चुप रहकर कहा—कुछ नहीं। अच्छा जाओ।

चन्द्रनाथ धीरे धीरे बाहर निकल आए। वे जाते समय बड़बड़ाते जाते थे—यही ठीक है! यही ठीक है! आज ही!

दसवाँ परिच्छेद ।

उसी रातको जब फिर सरयू अपने कमरेमें लौटकर आई, तब वह रोती हुई मन ही मन कहने लगी—मै तो किसी प्रकार विष नहीं खा सकूँगी । यदि मै अकेली होती, तो मर सकती थी । पर मै अकेली तो हूँ ही नहीं, मै तो माँ हूँ । माँ होकर सन्तानकी हत्या किस प्रकार कर सकूँगी ?

यही सोचकर सरयू उस रातको नहीं मर सकी । पर फिर भी उसे इस बातमे तनिक भी सन्देह नहीं रह गया था कि अब मेरे सुखके दिनोंका बिलकुल अन्त हो गया ।

आधी रातके समय चन्द्रनाथ सहसा चलकर अपनी स्त्रीके कमरेमें पहुँचे । उसकी सब बाते उन्होने सुन ली थीं, इसलिए उन्होंने उसे पागलोंकी भाँति गोदमे उठा लिया और वे बार बार अस्फुट स्वरम कहने लगे—नहीं सरयू, तुम ऐसा काम कभी मत करना । पर इससे अधिक वे उसे और कोई आश्वासन नहीं दे सकते थे । उन्हें अपने इतने बड़े और विशाल भवनमें उस हतभागिनीके रहनेके लिए कोई ऐसा कोना भी ढूँढ़े नहीं मिलता था जिसमें वह अपना लज्जाहत मुख छिपाकर बैठ सकती । वे इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि सारे गाँव भरमें किसीमें नाम मात्रके लिए भी ममता है, जिसके आश्रयमें रहकर वह अपने गरम आँसुओंकी एक बूँद भी पोंछ सकती । उसने बहुत कुछ रो धोकर सात दिनका समय भिक्षास्वरूप माँग लिया था । अब भाद्रपदके यही अन्तिम

सात दिन वह अपने स्वामीके आश्रयमें रहकर पहलेकी भाँति निराश्रिता और मार्गकी भिखारिणी हो जायगी। भाद्रपदमें घरसे कुत्ते बिल्लीको भी निकालना नहीं होता, उससे गृहस्थका अमगल होता है; इसी लिए सरयूका निवेदन स्वीकृत हुआ था।

एक दिन उसने स्वामीका हाथ पकड़कर कहा—मेरे भाग्यमें जो कुछ लिखा है, वह भोग लूँगी। इसके लिए तुम किसी प्रकारकी चिन्ता दुःख न करो। मुझ जैसी अभागिनीको अपने घरमें लाकर तुमने अनेक कष्ट सहे है, पर अब तुम और अधिक कष्ट न सहना। मुझे बिदा करके तुम फिर अपनी गृहस्थी नष्ट न कर डालना।

चन्द्रनाथ सिर झुकाकर चुपचाप रह गए। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्हे अच्छा या बुरा कोई जवाब सूझता ही न था। हाँ, वे मनमे इतना अवश्य समझते थे कि आजकल सरयू बहुत अधिक बोलने लग गई है। इतने दिनो तक उसके मनमें जो भय था, वह अब नहीं रह गया था। आजसे दो ही दिन पहले तक वह बिलकुल मुँह ढाँककर ससारमें रहा करती थी। यदि साधारण हवा चलती थी, तो भी वह डर जाती थी। पर अब उसके ऊपरका छद्म वेश खिसककर गिर पड़ा था। पीछेसे उसकी सच्ची बातें खुल गई थीं, इसी लिए अब वह निर्भय होकर बातें किया करती है। इस जीवनमें उसके पास जो कुछ था, वह सब उसके स्वामी, उसके सर्वस्वने समाजकी अदालतमें डिक्री जारी कराके नीलाम करा लिया था। उसका सर्वस्व छिन गया था और वह एक प्रकारसे सन्यासिनी हो गई थी, इसी लिए अब वह अपने स्वामीके साथ स्वच्छन्द रूपसे बाते किया करती थी। मित्रके समान, शिक्षकके समान, उपदेश देकर निर्भीक भावसे अपनी सम्मति प्रकट किया करती थी। और फिर उस दिन रातके समय दोनोंने ही

एक दूसरेको क्षमा कर दिया था। चन्द्रनाथने उसे विष खानेके लिए तैयार किया था। उनकी इस आत्मग्लानिने सरयूके सब दोष ढक दिए थे।

दूसरे दिन प्रातःकालसे ही हरिकाली एक कागजपर टिकट लगाकर अपने पतिसे उसपर न जाने क्या क्या ऊटपटॉग बातें लिखाने लगी।

ब्रजकिशोरने एक बार पूछा—ये सब बाते लिखनेसे क्या होगा?

हरकालीने घुड़ककर कहा—यदि तुम्हें कुछ भी बुद्धि होती, तो तुम यह बात पूछते ही नहीं। पहले भी एक बार तुमने मेरी बात नहीं मानी थी, इसी लिए इतना सब कुछ हुआ। अब फिर कभी किसी बातमे अपनी अक्ल न लड़ाना।

हरकालीने जो जो कहा, वह सब ब्रजकिशोरने एक सुबोध बालकके समान लिख दिया। जब लिखना समाप्त हो गया, तब हरकालीने उनके हाथसे कागज लेकर आदिसे अन्त तक सब कुछ आप ही पढ़ा और तब सिर हिलाकर कहा—हॉ, सब ठीक है।

निर्बोध ब्रजकिशोर चुपचाप बैठे रहे। तीसरे पहर वही कागज लेकर हरकाली सरयूके पास जा पहुँची और बोली—बहू, इस कागज पर तुम अपना नाम लिख दो।

कागज हाथमें लेकर सरयूने हरकालीसे पूछा—मामी, यह क्यों?

हर०—मैं जो कुछ कहती हूँ, वह करो।

सर०—क्या मै यह भी नहीं सुन सकती कि मै इस पर क्यों अपना नाम लिख दूँ?

हरकालीने मुँह भारी बनाकर कहा—बेटी, यह सब तुम्हारे ही भलेके लिए है। जब तुम यहाँ नहीं रहोगी, तब हम लोग इस बातकी

खोज-खबर लेने नहीं जायँगे कि तुम कहाँ हो और कैसी हो। इसी लिए बेटी, तुम चाहे जहाँ और जिस तरह रहोगी, तुम्हे खानेके लिए महीने महीने पाँच रुपए मिलते रहेगे। यह क्या कोई बुरी बात है?

सरयू अपना भला बुरा समझती थी। उसने यह भी समझ लिया था कि इस हितैषिणीके हृदयमें मेरा हित कहाँ तक छिपा हुआ है। परन्तु जिसकी प्रासादके समान अट्टालिका ढहकर नदीमे बह जाती है, वह थोड़ा सा काठ कबाड़ या ईट पत्थर बचानेके लिए नदीसे झगड़ा करना नहीं चाहता। तो भी उसने एक बार हरकालीके मुखकी ओर देखा। परन्तु यह वही दृष्टि थी, जिस दृष्टिके साथ हरकाली अपने अन्त.करणसे घृणा किया करती थी, डरा करती थी। आज भी वह उस दृष्टिको सहन न कर सकी। उसने आँखे नीची करके कहा—बहू।

सर०—हाँ मामी, लिख देती हूँ।

सरयूने कलम उठाकर उस कागज पर बहुत अच्छी तरह अपने हस्ताक्षर कर दिए।

आज आश्विनकी द्वितीया थी। आज ही सरयूके जानेका दिन था। प्रात·कालसे ही बहुत अधिक वर्षा हो रही थी। हरकालीको इस बातकी चिन्ता होने लगी कि कहीं ऐसा न हो कि आज भी इसका जाना रुक जाय।

दिन भर सरयू घरकी सब सामग्री उठा उठाकर ठिकानेसे रख रही थी। उसने मूल्यवान् वस्त्र आदि अलमारियोंमें बन्द किए, सब गहने आदि लोहेके सन्दूकमें बन्द करके उसमे ताला बन्द किया और तब उसने स्वामीको बुलानेके लिए आदमी भेजा और आप जमीन पर लोट-कर बिलख बिलखकर रोने लगी। घर छोड़नेका समय जितना ही

समीप आता जाता था, उसका क्लेश उतना ही अधिक असह्य होता जाता था। वह समझती थी कि जिस प्रकार मैंने ये सात दिन काटे हैं, उस प्रकार आजका दिन नहीं कटेगा। उसे इस बातकी शका होने लगी कि कहीं आज आखिरी दिन मेरा धैर्य न छूट जाय; कहीं ऐसा न हो कि चलनेके समय मुझे नितान्त तिरस्कृत भिक्षुककी भाँति पीछे मुड़कर देखना पड़े। जिस आत्म-सम्मानकी उसने आज तक अपने प्राणोंसे भी बढकर रक्षा की थी, उसका परित्याग करनेकी उसकी किसी प्रकार प्रवृत्ति नहीं होती थी।

जब चन्द्रनाथ आए, तब सरयू आँसू पोंछकर उठ बैठी। उसने कहा—आओ, आज मेरे जानेका दिन है।

उस समय सरयूकी आँखोंमें जल भरा हुआ था। चन्द्रनाथ दूसरी ओर देख रहे थे। सरयूने उनके पास पहुँचकर कहा—ये तालियाँ लो। जब तक तुम दूसरा ब्याह न कर लेना, तब तक ये तालियाँ किसी औरको मत देना।

चन्द्रनाथने रुँधे हुए कण्ठसे कहा—कहीं रख दो।

सरयूने चन्द्रनाथको हाथसे खींचकर उनका मुँह अपनी ओर कर लिया और हँसते हुए कहा—क्या तुम रोनेकी चेष्टा कर रहे हो?

चन्द्रनाथने मनमे सोचा कि इसने यह बहुत कड़ी बात कही है। सरयूने तुरन्त ही उनकी आँखोंसे आँसू पोछते हुए आदरपूर्वक कहा—याद करो, मैने आज तक कभी तुमसे कोई परिहास नहीं किया; इसी लिए मैंने आज चलते चलाते जरा सा परिहास कर लिया। तुम नाराज न होना।

कुछ ठहरकर सरयूने फिर कहा—जो कुछ था, वह सब मैंने बन्द करके अलमारीमे रख दिया है। देखो, इस बातका ध्यान रखना कि कहीं मेरी एक भी चीज नष्ट न हो।

चन्द्रनाथने देखा कि सरयूके हाथोंमें काँचकी चार पाँच चूड़ियोंके सिवा सारे शरीर पर और कोई आभूषण नहीं है । सरयूकी यह अवस्था देखकर मानों उनकी आँखोंमे शूल बिंध गए। पर वे कर ही क्या सकते थे ! आज दो गहने पहनकर जानेका प्रस्ताव करके वे देवीकी उस प्रतिमूर्तिको किस प्रकार अपमानित कर सकते थे ! सरयूने गलेमें आँचल डालकर उन्हें प्रणाम किया, उनके चरणोंकी धूलि लेकर माथे पर लगाई और कहा—मेरे चले जानेके कारण तुम व्यर्थ दुःखी न होना। मैं यह बात अच्छी तरह जानती हूँ कि यह बात तुम्हारे हाथकी नहीं है ।

चन्द्रनाथ अब तक किसी प्रकार सब बातें सहन कर रहे थे, पर अब उनसे सहन न हो सका और वे जल्दीसे वहाँसे चले गए ।

सन्ध्यासे पहले ही गाड़ी जानेका समय था। स्टेशन जाना था। पानी बरस रहा था। घरके पुराने और बुढ़े 'गुमाश्ताजी' अँगोछेमें दो एक कपड़े बाँधकर कोचवानके पास जा बैठे। उस समय उन्हें सीताजीकी कथा याद आ गई थी, इस लिए उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। उन्होने आँसू पोंछते हुए मन ही मन कहा—हे भगवन्, मैं नौकर हूँ, इसी लिए मुझे आज यह दण्ड मिल रहा है ।

चलते समय सरयूने हरकालीके मनका भाव समझकर उसे बुलाया और प्रणाम किया। उसकी पैरोंकी धूलि माथे पर चढ़ाते हुए कहा—मामीजी, मेरा बक्स देख लो ।

हरकाली कुछ अप्रतिभ सी हो गई। बोली—नहीं नहीं, रहने दो ।

इतनेमें ही टीनका बक्स खुल गया और हरकालीकी दृष्टि उस पर जा पड़ी। उसके लिए लोभका सवरण करना असम्भव था। उसने

तिरछी निगाहसे देखा कि बक्समें दो एक जोड़ी साधारण कपड़े, दो तीन पुस्तकें, कागजमें लपेटी हुई दो तसवीरें और दो एक दूसरी चीजें थीं। सरयूने कहा—बस, यही है।

हरकाली धीरेसे वहाँसे खिसक गई।

सन्ध्यासे पहले ही सरयू गाड़ी पर जा बैठी। कोचवानने गाड़ी हाँक दी। गाड़ी फाटकसे बाहर निकलते ही जल्दी जल्दी चलने लगी। दूसरे खण्डकी खिड़की खोलकर मणिशंकरने यह सब देखा। आज सहसा उनके मनमें यह बात आई कि यह काम अच्छा नहीं हुआ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।

मणिशंकरको सारी रात नींद नहीं आई। रात भर उनके कानोंमें गाड़ीके चलनेका गम्भीर शब्द गूँजता रहा । तड़के ही वे पलग परसे उठकर बाहर आए । आते ही उन्होंने देखा कि दरवाजे पर एक अपरिचित आदमी बहुत ही दीन वेशमे लेटा हुआ है। जब वे उसके कुछ पास पहुँचे, तब वह उठकर खडा हो गया और बोला—मैं एक पथिक हूँ ।

जब मणिशकर वहाँसे चलने लगे, तब उसने पीछेसे उन्हें बुलाकर पूछा—क्यों साहब, मणिशकरजीका मकान यही है ?

उन्होंने मुडकर कहा—हाँ ।

उसने फिर पूछा—क्या आप यह बतला सकते है कि उनसे किस समय भेंट हो सकेगी ?

मणि०—मेरा ही नाम मणिशकर है ।

उस आदमीने नमस्कार करके कहा—मै आपके ही पास आया हूँ।

मणिशकरने उसे सिरसे पैर तक कई बार देखते हुए कहा—क्या तुम काशीसे आ रहे हो ?

आ०—जी हाँ ।

मणि०—तुम्हें हरिदयालजीने भेजा है ?

मणि०—तुम रुपएके लिए आए हो ?

आ०—जी हाँ ।

मणिशकरने मुस्कराकर कहा—तो फिर मेरे पास क्यों आए हो ? तुमने क्या समझा था कि मै ही रुपए दूँगा ?

उस आदमीने सिर हिलाकर कहा—जी नहीं, हरिदयालजीने मुझसे कह दिया था कि आप ऐसा इन्तजाम कर सकते हैं जिसमें मुझे रुपए मिल जायँ।

मणिशंकरने भौं सिकोड़कर कहा—अच्छा, मैं इन्तजाम कर दूँगा। तुम अन्दर आओ।

दोनो आदमी एक अकेले कमरेके अन्दर जाकर किवाड़ बन्द करके बैठ गए। मणिशंकरने पूछा—तो क्या ये बातें बिलकुल सच हैं?

आ०—जी हाँ, बिलकुल सच हैं।

इतना कहकर उस आदमीने कई पत्र निकाले। मणिशंकरने उन सब पत्रोंको आदिसे अन्त तक पढ़कर कहा—लेकिन इसमें बहूका क्या दोष है?

वह बोला—जी नहीं, इसमें बहूका तो कोई दोष नहीं है, पर हाँ, माँके दोषके कारण लड़की भी दूषित हो गई है।

मणि०—परन्तु जो स्वयं दोषी नहीं है, उसे क्यों व्यर्थ विपत्तिमें फँसाते हो?

आ०—मै क्या करूँ, मेरे पास और कोई उपाय नहीं है। रुपएके लिए ही मुझे यह सब करना पड़ रहा है।

मणिशंकरने कुछ देर तक सोचकर कहा—देखो भाई, यदि यह बदनामी फैल गई तो मेरे लिए भी बहुत बड़ी लज्जाकी बात होगी। चन्द्रनाथ मेरा भतीजा है।

राखालदासने सिर हिलाकर दृढ़तापूर्वक कहा—मैं क्या करूँ, मेरे पास और कोई उपाय नहीं है।

मणि०—यह बात तो तुम्हारी शक्ल देखनेसे ही मालूम हो जाती है। अच्छा, यदि मान लो कि मैं अपने ही पाससे तुमको यह रुपए दे दूँ, तो कैसा हो?

रा०—बहुत अच्छी बात है। मुझे फिर चन्द्रनाथजीके पास जानेकी तकलीफ न उठानी पड़ेगी।

मणि०—पर यह तो निश्चय है न कि तुम रुपए पाते ही गाँव छोड़कर चले जाओगे और किसी पर यह बात प्रकट न करोगे?

रा०—हाँ, निश्चय है।

मणि—तुम्हे कितने रुपए चाहिए?

रा०—कमसे कम दो हजार।

मणिशकरने बाहर जाकर अपने नायब लक्ष्मीनारायणको बुलाया और उनसे दो तीन बातें कहीं। इसके उपरान्त उन्होंने फिर अन्दर आकर सन्दूक खोला और उसमेंसे हजार हजार रुपएके दो नोट निकालकर राखालदासके हाथमे दे दिए और कहा—यहाँसे दस कोस पर सरकारी खजाना है। वहीं जाकर इन नोटोंको भुना लेना और कहीं ये नहीं भुन सकेंगे। और अब फिर कभी इस ओर मत आना। मै तुमसे सन्तुष्ट नहीं हूँ, इस लिए यदि अब फिर कभी तुम इस ओर आनेका नाम लोगे, तो फिर जीते न लौट सकोगे। याद रखना, मैं पहले ही कहे देता हूँ।

राखालदास चला गया और बहुत तेजीसे चलता हुआ तीसरे परह शहरमें जा पहुँचा। उस समय कचहरी बन्द थी, इस लिए उसका काम न हो सका।

दूसरे दिन ठीक समय पर राखालदासने खजानचीके पास पहुँचकर उनके सामने दोनों नोट रख दिए और कहा—मुझे इनका रुपया चाहिए।

खजानचीने दोनों नोटोंको उलट पुलटकर देखा और उससे कहा—बैठो। इसके बाद वे बाहर निकल आए और पुलिसके एक दारो-गाको साथ लिए हुए फिर वहाँ जा पहुँचे और राखालदासको दिखलाते

हुए बोले—ये नोट चोरीके हैं। जमीदार मणिशंकर बाबूका आदमी कहता है कि एक आदमी कल सबेरे भीख माँगनेके बहानेसे उनके घरमें पहुँचा था और कमरेमें जाकर ये दोनों नोट चुरा लाया था। नोटका नम्बर मिलता है।

राखालदासने कहा—मुझे तो स्वय मणिशकरजीने ये नोट दिए है।

खजानचीने कहा—अच्छा, यह बात अदालतमें जाकर कहना।

समय आने पर जब राखालदास अदालतमें पहुँचा, तब उसने हाकिमसे कहा कि जिनके ये नोट हैं, उन्हींसे पूछने पर सब बातें आपसे आप खुल जायँगी।

जिस दिन मुकद्मा डिप्टी साहबकी अदालतमें पेश हुआ, उस दिन मणिशकरजीने वहाँ उपस्थित होकर हलफ लेकर यह बयान किया कि मैने अपने जीवनमें आज तक इस आदमीको कभी नहीं देखा। ये दोनों नोट मेरे ही बक्समें थे, मैने किसीको दिए नहीं थे। राखाल अपने आपको बचानेके लिए बहुत सी बातें कहना चाहता था। उनमेंसे कुछ बाते तो हाकिमने लिख लीं और कुछ मणिशकरके वकील-मुख्तारोंने गड़बड़ करके उड़ा दीं। तात्पर्य यह कि राखालकी बातो पर किसीने विश्वास नहीं किया और डिप्टी साहबने उसे दो वर्ष सपरिश्रम कारागारवासका दण्ड दे दिया।

बारहवाँ परिच्छेद।

हरिदयालके घरमे अब पुरानी दासी तक नहीं रह गई थी। सरयूने जिस समय उनके घरमें प्रवेश किया, उस समय वहाँ कोई नहीं था। सारा मकान बिलकुल खाली पड़ा था। गुमाश्ताजीने रोते हुए पूछा—अच्छा तो बेटी, अब मै जाऊँ?

सरयू उन्हे प्रणाम करके चुपचाप सिर झुकाए हुए खडी रही। गुमाश्ताजीने रोते रोते वहाँसे प्रस्थान किया। हरिदयालके घर आने तक भी वे वहाँ न ठहर सके। वहाँ ठहरनेकी उनकी इच्छा भी नहीं थी।

सन्ध्याके समय हरिदयाल लौटकर घर आए। सरयूको दालानमें बैठे हुए देखकर उन्होने पूछा—कौन?

सरयू प्रणाम करके उठ खड़ी हुई। उसने अपना मुँह खोलकर कहा—मैं हूँ।

हरि०—कौन? सरयू!

हरिदयालने बहुत ही आश्चर्यके साथ और ध्यानपूर्वक देखा कि सरयूके शरीर पर एक भी गहना नहीं है। जो धोती वह पहने थी, या जो चादर वह ओढ़े थी, वह भी बहुत ही साधारण थी। उसके साथ कोई नौकर या मजदूरनी भी उन्हें नहीं दिखाई दी। हाँ, उसके पास ही एक छोटासा साधारण बक्स अवश्य पड़ा हुआ था। उन्होंने सारी बातें समझ लीं और बिगड़ कर कहा—मैंने जो सोचा था, ठीक वही हुआ। जान पड़ता है, उन्होंने तुम्हें निकाल दिया है।

सरयू बिलकुल चुपचाप थी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

हरिदयालने बहुत ही कर्कश स्वरसे कहा—अब यहाँ तुम्हारा रहना नहीं हो सकता। तुम लोगोंको एक ही बार आश्रय देकर मैंने अच्छी शिक्षा पा ली है। बस, अब नहीं।

सरयूने सिर झुकाकर पूछा—माँ कहाँ है?

हरि०—वह तो भाग गई। मुझे आफतमें डालकर वह दूर हट गई। उसका जैसा चरित्र था, वैसा ही उसने किया।

मारे क्रोधके हरिदयाल आग हो रहे थे। उन्होंने सहसा व्यंग्यपूर्वक कहा—मै नहीं जानता कि वह कहाँ है। पर हाँ, कहीं मजा करती होगी।

सरयू वहीं बैठ गई। वह तो लौटकर अपनी माँके पास ही आई थी, पर वहाँ वह थी ही नहीं।

हरिदयालने फिर कहना आरम्भ किया—मै तुम्हें अपने घरमे स्थान देकर अपनी जात नहीं खोना चाहता। जो तुम्हें इतने आदरसे ले गया था, अन्तमें वह तुम्हारे रहनेके लिए एक झोंपड़ी भी न बनवा सका, इसी लिए वह आकर हमारे यहाँ छोड़ गया है। अब तुम यहाँसे जाओ।

अब सरयू रो पड़ी। उसने रोते रोते कहा—दादाजी, माँका तो कहीं पता ही नहीं है। अब मै जाऊँ किसके पास?

पर अब हरिदयालमे किसी प्रकारकी माया ममता नहीं बच रही थी। उन्होंने साफ कह दिया—काशी जैसे नगरमें तुम्हारे रहनेके लिए स्थानकी कमी नहीं है। अपने सुभीतेके अनुसार कोई जगह ढूँढ लेना।

हरिदयाल उस समय जले भुने थे, इसी लिए उन्होंने यह बात कही थी।

जब सरयूके स्वामीने ही उसे अपने घरमें रहनेके लिए स्थान नहीं दिया था, तब हरिदयाल उसे अपने यहाँ कैसे और क्यों ठहराते ? इसके लिए उन्हे किसी प्रकारका दोष नहीं दिया जा सकता, यह बात सरयूने अच्छी तरह समझ ली थी । पर वह बेचारी भी लाचार थी; क्योंकि उसके रहनेके लिए कोई स्थान ही नहीं था । अपने पतिके घरमें तो वह थोड़े दिनोंके लिए अतिथिकी भाँति गई थी और अब वह वहाँसे लौट आई थी । अब वह आदर यत्न करनेवाला उलटकर यह भी न देखेगा कि मेरा वह अतिथि कहाँ चला गया । इस समय उसे बहुत अधिक मानसिक यातना हो रही थी और वह चुपचाप आँखोंसे आँसू बहा रही थी । इस सोलह वर्षकी अवस्थामें ही उसके सारे शौक, सारी कामनाएँ पूरी हो गई थीं । न तो ससारमें उसकी माता ही थी और न पिता ही । स्वामीने उसका परित्याग ही कर दिया था । उसके रहनेके लिए कहीं कोई स्थान नहीं था । केवल कलक, लज्जा और विपुल रूप-यौवन । यह सब कुछ रहते हुए भी लोग जीवित रह सकते है, पर सरयू जीवित नहीं रह सकती थी । वह सोचती थी कि मेरी आयु कितनी है और अब मुझे और कितने दिनों तक जीना पड़ेगा । अब चाहे जितने दिनो तक उसे जीवित रहना पड़े, पर इसमें सन्देह नहीं कि आज उसके लिए एक नवीन जन्म दिन था । यद्यपि वह बाल्यावस्थामे ही बहुत अधिक दुःख और कष्ट झेल चुकी थी, तथापि इतना अधिक अपमान और लाछन उसने आज तक कभी नहीं भोगा था । हरिदयाल उत्तरोत्तर उत्तेजित स्वरसे बातें कर रहे थे, पर अबकी वे चिल्ला उठे—तुम अभी तक यहाँ बैठी क्यों हो ?

सरयूने बहुत ही आकुल होकर पूछा—तो फिर कहाँ जाऊँ ?

हरि०—मैं क्या जानूँ !

सरयूने रुँधे हुए गलेसे कहा—दादाजी, आज रात—

हरि०—नहीं नहीं, मैं तुम्हें क्षणभर भी यहाँ नहीं रहने दे सकता।

सरयू उठकर खड़ी हो गई। अब उसमें कुछ साहस आ गया था। उसने मनमें सोचा कि सौ अपराध करने पर भी मै जिससे भिक्षा माँग सकती थी, जब उसीसे मैने भिक्षा नहीं माँगी, तब किसी दूसरेसे मैं किस लिए भिक्षा माँगूँ? उसने मन ही मन कहा—चाहे और कुछ भी न हो, पर काशीकी गगा तो अभी तक नहीं सूखी है। गंगा न तो समाजसे डरती है और न उसकी जाति ही जा सकती है। वह एक दुःखी अबलाको इस दुःखके दिनोंमे मजेमें अपनी गोदमें ले लेगी। मुझे और कहीं आश्रय न मिले न सही, मै वहीं जाकर रहूँगी।

यह सब सोचकर सरयूने वहाँसे चलना चाहा, पर उससे चला नहीं गया। वह फिर बैठ गई।

हरिदयालने अपने मनमें सोचा कि मैं अपने सारे जीवनमे ऐसी विपत्तिमे कभी नहीं पड़ा था। उनका गला सूखा जा रहा था। उन्होंने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि आगे मुझसे कुछ कहा ही न जाय। इस भयसे वे चिल्लाकर बोले—जान पड़ता है कि जब तक तुम्हारी बेइज्जती न होगी, तब तक तुम यहाँसे न जाओगी। अब तुम यहाँसे चली जाओ।

इतनेमें सहसा किसीने बाहरसे हरिदयालको पुकारा। वे कुछ घबरा गए। उन्होंने सोचा कि कैलास चाचा आ रहे हैं। इतनेमें कैलासचन्द्र एक हाथमें शतरंजकी पोटली और दूसरे हाथमें हुक्का लिए हुए अन्दर आ पहुँचे। यह बात नहीं थी कि वे अभी यहाँ आए हों। वे बहुत देरसे बाहर खड़े हुए हरिदयालका डाँटना डपटना और सब कहासुनी सुन रहे थे; इसी लिए जब वे अन्दर आए, तब उनके हाथमें शतरंजकी पोटली और हुक्का तो अवश्य था, पर उनके

चेहरे पर हँसी नहीं थी। वे सीधे सरयूके पास जाकर खड़े हो गए और बोले—क्यों बेटी सरयू, तुम कब आई ?

सरयूने कैलासको पहचानकर प्रणाम किया।

कैलासने आशीर्वाद देते हुए कहा—आओ बेटी, चलें। तुम मेरे यहाँ न आकर यहाँ क्यो आई ?

इतना कहकर कैलासचन्द्रने हाथसे हुक्का रख दिया और सरयूका बक्स बगलमे दबाकर कहा—चलो बेटी, अब सन्ध्या हो रही है।

कैलासचन्द्रने यह बात इस प्रकार कही थी, मानो वे उसे लेनेके लिए ही आए थे। पर सरयूकी समझमें कुछ भी न आया और वह चुपचाप वहीं बैठी रही।

कैलासने फिर कहा—क्यो बेटी, तुम्हें हमारे यहाँ चलनेमें लज्जा क्यों होती है ? मेरे यहाँ कोई तुम्हारा अपमान न कर सकेगा। हम दोनों आदमी अच्छी तरहसे रहेंगे। चलो, देर मत करो।

पर सरयूसे फिर भी न उठा गया।

हरिदयालने चिल्लाकर पूछा—चाचाजी, तुम यह क्या कर रहे हो ?

कैला०—कुछ नहीं।

इतना कहकर कैलास सरयूक बहुत पास आ गए। ऐसा जान पड़ता था कि वे उसका हाथ पकड़ना चाहते हैं। उन्होंने बहुत ही कातर भावसे कहा—चलो बेटी, उठो। तुम यहाँ बैठी हुई क्यों कटु बातें सुन रही हो ?

जब हरिदयालने देखा कि सरयू उठकर खड़ी हो गई, तब उन्होंने कैलाससे पूछा—क्यों चाचाजी, क्या तुम इसे अपने घर ले जा रहे हो ?

कैलासने उत्तर दिया—नहीं, मैं इसे उठाकर सड़क पर बैठानेके लिए ले जा रहा हूँ।

यह व्यंग्योक्ति सुनकर हरिदयालने कुछ विरक्त भावसे कहा—पर चाचाजी, तुम यह अच्छी बात नहीं कर रहे हो। जरा सोच लो कि आगे चलकर क्या होगा।

कैलासचन्द्रने हरिदयालको कोई उत्तर नहीं दिया और सरयूसे कहा—बेटी, उठो, जल्दी चलो। नहीं तो फिर न जाने ये और क्या कह बैठेंगे।

सरयू द्वारके बाहर निकल आई। कैलासचन्द्र भी बगलमें बक्स दबाए हुए उसके पीछे पीछे चल पड़े।

हरिदयालने पीछेसे पूछा—क्यों चाचाजी, क्या अन्तमें तुम भी अपनी जात गवाँओगे?

कैलासने बिना पीछे मुड़े ही कहा—हाँ, यदि तुम मेरी जात लेना चाहो, तो ले सकते हो।

हरि०—तो फिर आजसे हमारा तुम्हारा खान पान और लेन देन सब बन्द हो गया।

कैलासचन्द्र पीछे मुड़कर खड़े हो गए। उन्होंने कहा—क्या मै कभी किसीके घर बिना बुलाए टुकडा तोड़ने गया हूँ?

हरि०—न सही, पर फिर भी मैं तुम्हे सावधान किए देता हूँ।

कैलासकी भँवोंमें बल पड़ गए। वे इतने दिनोंसे काशीमे रहते थे, पर आज तक कभी किसीने उन्हें क्रोध करते हुए नहीं देखा था। आज पहले ही पहल वे क्रोध करते हुए देखे गए थे। उन्होंने बहुत बिगड़कर कहा—हरिदयाल, क्या मैं कोई काशीका पण्डा हूँ या यजमानोंको प्रसन्न करके अपना निर्वाह करता हूँ। मुझे तुम क्यों डरा रहे हो? मुझे जो कुछ अच्छा लगा, वही मैंने आज तक किया

और अब भी जो अच्छा लगेगा, सो करूँगा। इसके लिए तुम्हें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं।

हरिदयालने कुछ लज्जित होकर कहा—मैं तो तुम्हारे ही भलेके लिए—

कैला०—नहीं नहीं, तुम रहने दो। जब मैंने पचपन वर्ष बिना तुम्हारे परामर्शके बिताए हैं, तब बाकी दो चार वर्ष भी बिना तुम्हारे परामर्शके बीत ही जायगे। अब जाओ, तुम घर बैठकर अपना काम करो।

हरिदयाल लौट पड़े।

कैलासचन्द्रने अपने घर पहुँचकर बक्स रखते हुए बहुत ही सहज भावसे कहा—बेटी, यह सब घरबार तुम्हारा है। बस अब मैं और तुमसे क्या कहूँ, तुम अपनी इस गृहस्थीका सब काम धन्धा देखो। इस बूढ़ेका भी जरा ध्यान रखना।

हम यह तो नहीं कह सकते कि कैलासको और कुछ कहना नहीं था। पर सरयूने बहुत देर तक आँसू पोंछते हुए समझ लिया कि अब इन्हें और कुछ कहना नहीं है।

सरयूको आश्रय मिल गया।

तेरहवाँ परिच्छेद ।

जब शरत्कालकी प्रातःकालीन वायु स्निग्ध और मधुर रूपसे सचार करती हुई चन्द्रनाथके कमरेमें प्रवेश करती थी, तब सारी रात जागते रहनेके उपरान्त उन्हे नींद आ जाती थी; और फिर जब सूर्यकी तप्त किरणे जॅगलेमेंसे होकर उनके चेहरे और आँखोंपर पड़ती थीं, तब उनकी नींद फिर टूट जाती थी। परन्तु निद्राका आवेग किसी प्रकार कम ही नहीं होता था, रग रगमें समाया रहता था। पर फिर भी वे बहुत जोर करके बिछौना छोड़कर बाहर निकल आते थे। दिन भर कोई काम काज नहीं होता था, न किसी प्रकारका आमोद प्रमोद होता था, न उनके मनमें किसी प्रकारका उत्साह रहता था; और प्रायः दुःख या क्लेश भी नहीं रहता था। सुखकी कामना तो मानों उन्होंने बिलकुल छोड़ ही दी थी। अब चन्द्रनाथके दिन भी एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदय तक उसी प्रकार चले जाने लगे जिस प्रकार किसी शीर्णकाया नदी पर सन्ध्याकी बड़ी और बोझसे लदी हुई नाव इधर उधर हिल डोलकर और टेढ़ी मेढ़ी होकर धीरे धीरे चलती हुई स्वेच्छानुसार चली जाया करती है। उन्होंने यह बात बहुत अच्छी तरह समझ ली थी कि चारो ओर दूर दूर तक फैले हुए काले मेघोंने हमारे सुखरूपी सूर्यको जीवनके मध्याह्नमें ही ढक लिया है और इन मेघोंकी आड़में ही एक न एक दिन वह सूर्य अस्त हो जायगा, और इस जीवनमें फिर कभी हमें उसके दर्शन न होंगे। उनकी नीरव और निर्जन कोठरीमें इस निराशाकी काली छाया दिन पर दिन घनीसे और भी अधिक घनी

होने लगी और चन्द्रनाथ उसीमें बैठे बैठे आलस्यसे बन्द होती हुई आँखोंसे देखते हुए अपने दिन बिताने लगे ।

हरकाली कहा करती थी कि इसी अगहन मासमें चन्द्रनाथका दूसरा विवाह होगा । पर चन्द्रनाथ बिलकुल चुप रहा करते थे । उनका यह चुप रहना सम्मति-सूचक है अथवा असहमत होनेका लक्षण, इस बातका निर्णय करनेके लिए हरकाली अपने पतिके साथ प्राय: तर्क वितर्क किया करती थी । जब मणिशंकरजीसे पूछा जाता था, तब वे कहते थे कि चन्द्रनाथसे बिना पूछे इस विषयमें निश्चित रूपसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।

अबकी बार सौर कार्तिक मासमें दुर्गापूजा थी । मणिशंकरके दालानमेंसे शहनाईका गाना सबेरेसे ही गाँववालोंके कानोमे आनेवाले आनन्दोत्सवका समाचार पहुँचा रहा था । चन्द्रनाथकी नींद खुल चुकी थी । नींदसे बन्द होती हुई आँखे लिए हुए वे बिछौने पर पड़े पड़े सुन रहे थे कि शहनाईमेसे एक एक करके अनेक स्वर निकल रहे हैं, परन्तु उनमेका एक भी स्वर उनके लिए आनन्ददायक नहीं होता था, बल्कि धीरे धीरे उनके हृदयरूपी आकाशमें घोर काले-मेघकी छाया पड़ने लगी । आज सहसा उन्हें ऐसा जान पड़ा कि अब मुझसे यहाँ न रहा जायगा । उन्होने एक नौकरको बुला कर कहा—हमारा सब सामान ठीक कर दो । हम आज इलाहाबाद जायँगे ।

जब हरकालीने यह बात सुनी तो वह दौड़ी हुई आई । व्रजकिशोर भी आकर समझाने बुझाने लगे । यहाँ तक कि स्वयं मणिशंकरने भी आकर अनुरोध किया कि आज षष्ठीके दिन कहीं जानेकी आवश्यकता नहीं है । पर चन्द्रनाथने किसीकी बात न सुनी ।

दोपहरके समय हरिबाला भी आ पहुँची। जबसे सरयू गई थी, तबसे इधर वह पहले कभी नहीं आई थी।

चन्द्रनाथने उसे देखकर पूछा—बहन, आज तुम यहाँ कैसे आ गई?

हरिबालाने उनके प्रश्नका उत्तर दिए बिना ही पूछा—क्या आज कहीं परदेस जानेकी तैयारी है?

चन्द्र०—हाँ।

हरि०—क्या पश्चिम जाओगे?

चन्द्र०—हाँ।

हरिबालाने कुछ सोचकर कोमल स्वरमें पूछा—क्या और कहीं भी जाओगे?

चन्द्रनाथने हरिबालाका अभिप्राय समझकर कहा—नहीं।

चन्द्रनाथ कुछ अन्यमनस्क होकर इधर उधर करने लगे।

हरिबाला जो कुछ कहनेके लिए आई थी, वह बात कहनेमें उसे लज्जा भी हो रही थी और उसे मुँह पर लानेका उसे साहस भी न होता था। फिर भी कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त उसने साहस करके कहा—क्यो भइया, तुमने उसका कोई उपाय नहीं किया?

जबसे हरिबाला आई थी, तबसे चन्द्रनाथ और हरिबाला दोनोंके मनमे सरयूका ही ध्यान था, दोनों उसीकी बात सोच रहे थे, इसी लिए इस साधारण बातचीतसे ही दोनोंकी आँखोंमें आँसू भर आए। चन्द्रनाथने आपको सँभालते हुए दूसरी ओर देख कर कहा—भला, मै उसका क्या उपाय कर सकता हूँ!

हरि०—काशीमें वह है कहाँ?

चन्द्र०—जान पड़ता है, अपनी माँके पास होगी।

हरि०—हाँ, पर—

चन्द्रनाथने उसकी ओर देखते हुए पूछा—पर क्या ?

हरिबालाने कुछ देर तक चुप रहकर कोमल स्वरसे कहा—भइया, तुम नाराज मत होना—

चन्द्रनाथ चुपचाप उसकी ओर देखते रहे ।

हरिबालाने उसी प्रकार कोमल स्वरमे बहुत ही नम्रतापूर्वक कहा—भइया, उसे कुछ रुपया पैसा भेजा करो । अभी तो वह अकेली है, पर चार दिन बाद—

चन्द्रनाथने बात समझकर भी मानों नहीं समझी । उन्होने पूछा चार दिन बाद क्या ?

चन्द्रनाथके सामने ही हरिबालाने अपनी ऑखोमेसे ऑसुओकी दो बड़ी बड़ी बूँदे पोंछी और कहा—उसके पेटमे जो कुछ है, ईश्वर करे, वह जीता रहे, वह जब—

चन्द्रनाथ सिरसे पैर तक कॉप उठे । उन्होने बहुत जल्दीसे कहा—बहन, आज तो शायद षष्ठी है न ?

हरि०—हॉ भइया ।

चन्द्र०—तो फिर आज—

हरि०—तो क्या नहीं जाओगे ?

चन्द्र०—यही सोचता हूँ ।

हरि०—अच्छी बात है, ऐसा ही करो । जब पूजा बीत जायगी, तब जहॉ जी चाहे, वहॉ जाना । इधर दो चार दिन घरमे ही रहो ।

न जाने क्या सोचकर चन्द्रनाथ इसी बात पर राजी हो गए ।

विजया दशमी बीत जाने पर एक दिन चन्द्रनाथने अपने गुमाश्तेको बुलाकर कहा—गुमाश्ताजी, जब आप काशीमे उसे छोड़ने गए थे, तब आपने हरिदयालसे कुछ कहा भी था ?

गुमाश्ताजीने उत्तर दिया—उनसे तो मुझसे भेट ही नहीं हुई।

चन्द्रनाथने मानों कुछ भयभीत होकर कहा—क्या आपसे उनसे भेंट ही नहीं हुई। तब फिर आप उसे किसके पास छोड़ आए? उसकी माँके साथ तो आपकी भेट हुई थी न?

गुमाश्तेने सिर हिलाते हुए कहा—जी नहीं, उस समय घरमें कोई था ही नहीं।

चन्द्र०—कोई नहीं था? आपने इस बातका पता तो लगा लिया था न कि उस घरमे कोई रहता भी है या नहीं? यह भी तो हो सकता है कि हरिदयाल वह मकान छोड़कर किसी और मकानमे आ रहे हों?

गुमाश्तेने उत्तर दिया—मैने पता लगा लिया था। हरिदयाल उसी मकानमें रहते थे।

चन्द्रनाथने ठण्ढी साँस खींची। कुछ देर तक वे चुप रहे। फिर उन्होने पूछा—अब तक आपने उसे कितने रुपये भेजे है?

गु०—जी, मैने रुपया पैसा तो कुछ भी नहीं भेजा।

चन्द्रनाथको बहुत अधिक आश्चर्य और दुःख हुआ। उनका चेहरा पीला पड़ गया। उन्होंने कहा—कुछ भी नहीं भेजा? क्यों?

गुमाश्तेने कुछ लज्जित होकर कहा—मामाजीने कहा था कि पाँच रुपए महीनेके हिसाबसे कुछ भेज दिया जायगा।

यह उत्तर सुनते ही चन्द्रनाथके सारे शरीरमें मानों आग लग उठी। उन्होने बहुत ही बिगड़कर कहा—पाँच रुपए महीनेके हिसाबसे क्यो? रुपया क्या मामाजीका है? अब आप बराबर काशीके पतेसे पचास रुपए हर महीने भेज दिया कीजिए।

गुमाश्ताजी "जो आज्ञा" कहकर और कुछ स्तम्भितसे होकर वहाँसे धीरे धीरे चले गए।

जब हरकालीने यह बात सुनी, तब उसने आँखें तेरेकर कहा—वह तो पागल हो गया है।

हरकालीने गुमाश्ताजीको बुलवा भेजा। जब वे आए, तब हरकाली जोरसे हँस रही थी। गुमाश्ताजीने उसके हँसनेका शब्द सुना था और उसका मतलब भी समझा था। हरकालीने पूछा—गुमाश्ताजी उन्होंने कितना रुपया भेजनेके लिए कहा है?

सर०—पचास रुपए महीना।

जब अन्दरसे फिर हँसीका शब्द सुनाई पड़ा, तब गुमाश्ताजी कुछ अधिक दुखी हुए। हरकालीने बहुत देर तक हँसनेके उपरान्त अन्तमें गम्भीर भाव धारण करके अन्दरसे ही कहा—हमारे लड़केको जब क्रोध आता है, तब फिर कुछ नहीं सूझता। उस अभागिनका भाग्य ही ऐसा है। मैंने पाँच रुपया महीना देनेके लिए कहा था, इसीसे वह बिगड़ खड़ा हुआ है। तभी आपसे कहा है कि पचास रुपए हर महीने भेजा करो। गुमाश्ताजी आप समझ गए न? चन्द्रनाथ उसे एक पैसा भी नहीं भेजना चाहता।

पहले तो यह बात गुमाश्ताजीकी समझमें अच्छी तरह नहीं आई; पर ज्यों ज्यों वे अपने मनमे अच्छी तरह सोचने लगे, त्यों त्यों उन्हें यही जान पड़ने लगा कि हरकालीका कहना ही ठीक है। जिसे आदमी घरसे निकाल देता है, उसे भला अपनी इच्छासे इतना रुपया देता है!

बहुत कुछ सोच विचारकर गुमाश्ताजीने कहा—तो फिर आप जैसा कहें, वैसा किया जाय।

हर०—भला अब मैं और क्या कहूँगी। क्या आप इतनी साधारण बात भी नहीं समझ सकते?

गुमाश्ताजीने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—अच्छा, तो फिर कुछ न भेजा जायगा।

हर०—पर नहीं, आप उसे पाँच रुपये महीनेके हिसाबसे भेज दीजिएगा। यदि चन्द्रनाथ न दे, तो आप मेरे हिसाबमेंसे पाँच रुपये भेज दीजिएगा।

हरकालीको हर महीने पचास रुपए हाथ खर्चके लिए मिला करते थे।

गुमाश्ताजीने चलते समय कहा—अच्छा, पाँच रुपए महीनेके हिसाबसे भेज दिया करूँगा।

चन्द्रनाथ घर पर नहीं है, इलाहाबाद गए हुए हैं। सरकार महाशयने पहले सोचा था कि उन्हें पत्र लिखकर पूछ लिया जाय कि पाँच रुपए महीना भेजा जाय या पचास रुपए। पर फिर उन्होंने सोचा कि इस प्रकारकी असम्भव बातके लिए व्यर्थ लिखा पढ़ी करके अपनी बुद्धिहीनताका परिचय देनेसे क्या लाभ!

चौदहवाँ परिच्छेद ।

ऊपर लिखी घटनाको हुए दो बरस हो गए। इन दो बरसोंमें चाहे और कोई परिवर्तन हुआ हो और चाहे न हुआ हो, पर वृद्ध कैलासके जीवनमे बहुत बडा परिवर्तन हो गया है। जिस दिन उनका कमल चला गया था, जिस दिन उनके कमलचरणने अन्तिम साँस लेकर आँखें बन्द की थीं, उस दिनसे कैलासचन्द्रके लिए मानों इस विपुल विश्वने ही आँखे बन्द कर लीं थीं। परन्तु सरयूका यह क्षुद्र शिशु उन्हें फिरसे उस भूले हुए ससारके स्नेहमय जटिल पथ पर ले आया था। बहुत दिनोंके बाद उस दिन फिर उनकी छोटी छोटी आँखोमें जल भर आया था। उन्होंने आँखें पोंछते हुए कहा था—"हमारे घरमे विश्वेश्वर आए है।" अभी तक वह बहुत छोटा था। जब कोई उसे 'विशू' कहकर पुकारता था, तब वह कोई उत्तर तो नहीं दे सकता था, पर हाँ, देखता रहता था। उस समय वह या तो सरयूकी गोदमे, या लखियाकी माँकी गोदमें और या बिछौने पर पड़ा रहा करता था। पर जिस दिनसे उसने चौखटके बाहर पैर निकालना सीखा था, जिस दिनसे वह यह समझने लगा था कि दूधसे पानी अच्छा होता है और दुबिधासे रहित होकर साफ और जूठे सभी प्रकारके बरतनोमे मुँह लगाकर, सरयूको चकमा देकर, गले तक पानी पीना सीखा था, और जिस दिनसे उसे इस बातका पूरा विश्वास हो गया था कि अपने शुभ्र और कोमल उदर तथा मुखपर कोयलेकी कालिख या धूल पोत लेनेसे ही शरीरकी शोभा खूब बढ जाती है, उसी

दिनसे उसने सरयूकी गोद छोड़कर कैलासचन्द्रकी गोदमें दृढ रूपसे अपने लिए पूरा पूरा स्थान कर लिया था। सबेरा होते ही कैलासचन्द्र आवाज देते—विशु। विशु मुँह आगे बढाकर कहता—दादा! कैलासचन्द्र कहते—चलो तो बेटा, शम्भू मिसिरको एक बाजी मात कर आवें। विशु चट हाथमे शतरजकी पोटली उठाकर तुतलाता हुआ कहता—'तलो' और दोनो हाथ फैलाकर वृद्ध कैलासके गलेसे जोरसे लिपट जाता था। कैलासचन्द्रको उस समय बहुत अधिक आनन्द होता था। वे सरयूको बुलाकर कहते बेटी, हमारा विशु पक्का खिलाडी होगा। सरयू होंठ दबाकर हँसा करती थी। विशु हाथमे शतरंजकी पोटली लेकर वृद्ध कैलासचन्द्रकी गोदमे चढकर शतरज खेलनेके लिए बाहर चला जाता था। रास्तेमे यदि कोई हँसीसे कह बैठता था—चाचाजी, क्या वृद्धावस्थामे ये और दो हाथ निकल आए है? तो वे हँसकर उत्तर देते थे—हाँ भाई, अब हमारे दोनो हाथोंमे जोर नहीं रह गया है, बिलकुल सूख गए है, इसी लिए ये और दो नए हाथ निकल आए है, जिसमें ससाररूपी वृक्षसे मै नीचे न गिर पडूँ। वह यह कहता हुआ खिसक जाता था कि—भाई, बूढे बाबासे बात करनेमें कोई जीत नहीं सकता।

शम्भू मिश्रके घरमें जहाँ बैठकर लोग शतरज खेलते हें, वहाँ श्रीमान् विश्वेश्वरके लिए भी एक निर्दिष्ट स्थान है। वह दादाजीकी गोदमें बैठकर लाल रगकी थैली झुलाया करता था और गम्भीर भावसे देखता रहता था, और जब कभी आवश्यकता होती थी, तब दो एक चाल भी बतला दिया करता था।

जब दादाजीके हाथसे हाथीदाँतके मोहरे एक एक करके मारे जाते थे, तब विश्वेश्वर बड़े उत्साहसे उन मोहरोंको दोनों हाथोंसे पकड़कर

अपने पेट पर रखकर दबा लिया करता था। पर लाल रंगके वजीर पर उसका कुछ अधिक ध्यान रहता था। वह जब तक उसके हाथमे नहीं आ जाता था, तब तक वह लोलुप दृष्टिसे उसीकी ओर देखता रहता था। बीच बीचमें वह उसके लिए ताकीद करता हुआ कह भी देता था—दादा, वह! कैलासचन्द्र खेलके झोंकमे अन्यमनस्क होकर कह दिया करते थे—ठहरो बेटा! कभी कभी वह इधर उधर खिसक भी जाया करता था। उस समय कैलासका मन चचल भावसे कभी उसकी ओर और कभी शतरंजकी ओर आता जाता रहता था। इसीमें एकाध मोहरा मारा जाता था। कैलासचन्द्र उलटकर पुकारते थे—"आओ बेटा, देखो हम हार रहे है। आओ तो सही, दौड़के चले आओ।" विश्वेश्वर दौड़ा हुआ चला आता था और आकर फिर अपने पहले स्थान पर बैठ जाता था। साथ ही वृद्धका उत्साह भी दूना हो जाता था। जब खेल समाप्त हो जाता था, तब वह लाल रंगका वजीर हाथमे लिए हुए दादाजीकी गोदमें चढकर घर आता था।

इस प्रकार नए ढगसे कैलासचन्द्रके दिन बीत रहे थे। उनके जो पुराने बँधे हुए नियम थे, उनमे बाधा पड़ने लगी थी। अब पहलेकी भाँति शतरंजकी पोटलीका उतना अधिक यत्न नहीं होता था। अब वह प्राय: घरके एक कोनेमे पड़ी रहा करती थी। शम्भू मिश्रसे भी नित्य प्रात:काल भेंट करनेका उन्हें अवसर नहीं मिलता था। गगा पाँड़ेके साथ दोपहरका खेलना तो मानो एक प्रकारसे बन्द ही हो गया था। अब सन्ध्या समय मुकुन्द घोषकी बैठकमें पहलेकी भाँति लोगोंका जमावड़ा नहीं होता था। मुकुन्द घोष बुलाते बुलाते हार गए, पर कैलासचन्द्र रातके समय किसी प्रकार उनसे मिलते ही न थे। उस समय वे दीपकके प्रकाशमें बैठकर अपने नए शिष्यको शतरंज

खेलना सिखाया करते थे। कहा करते थे—विशु, घोड़ा ढाई घर चलता है।

विशु गम्भीर भावसे कहता था—घोला ?

कैलास०—हाँ घोड़ा—

विशु०—घोला चले ?

कैलास०—हाँ घोड़ा चले, ढाई घर चले।

विश्वेश्वरके मनमें नया ही भाव उदित होता था। वह कहता था—गाली बी चले।

कैलासचन्द्र हताश होकर प्रतिवाद करते हुए कहते थे—यह घोड़ा गाड़ी नहीं खींचता। वह दूसरा घोड़ा होता है।

यदि सरयू उस समय पास होती, तो वह अपने पुत्रकी बुद्धिकी तीव्रता देखकर मुँह पर आँचल रखकर हँसती हुई चली जाती थी।

विशु अपनी छोटी उँगलीसे संकेत करके कहता—वह ! अर्थात् वह लाल रंगका वजीर हमे दो। वृद्ध कैलासचन्द्रकी समझमें यह बात किसी प्रकार न आती थी कि इतनी अधिक चीजोंके रहते हुए लाल रंगके वजीर पर ही इसकी इतनी अधिक दृष्टि क्यों रहती है।

परन्तु विशुकी प्रार्थना किसी प्रकार अग्राह्य हो ही नहीं सकती थी। कैलासचन्द्र पहले उसे दो एक दूसरे मोहरे देकर भुलानेकी चेष्टा करते थे, पर विशु बहुत होशियार था। वह किसी प्रकार भूलता ही न था। उस समय वे इच्छा न होने पर भी उसकी माँगी हुई चीज उसके हाथमें देकर कहते थे—देखो बेटा, कहीं खो न देना।

विशु०—क्यों ?

कैलास०—जब वह खो जायगा, तो फिर खेलेंगे कैसे ?

विशु०—नहीं खेलेंगे ?

कैलास०—नहीं बेटा, फिर कैसे खेलेंगे !

विशु गम्भीर होकर कहता—दादा, बर्जील ?

कैलास०—हाँ बेटा, बर्जीर ।

एक दिन भोलानाथके घरमें कथा थी । कैलासचन्द्रने कहा—विशु, चलो कथा सुन आवे ।

विश्वेश्वर धोती कुरता पहनकर, माथेमे बिन्दी लगाकर बाल सँवार कर दादाकी गोदमे चढकर कथा सुनने गया । उस दिन व्यासजी राजा भरतका उपाख्यान सुना रहे थे । वे करुण कण्ठसे सुना रहे थे कि किस प्रकार उस वनवासी महापुरुषकी गोदमे हिरनका बच्चा आपसे आप आ गया था, किस प्रकार तुरन्तका जन्मा हुआ मृग-शावक कातर दृष्टिसे आश्रयकी भिक्षा माँग रहा था । राजा भरतने उस निराश्रयको आश्रय दिया था । उस समय विशु कुछ खिसककर अलग बैठ गया था । कैलासचन्द्रने उसे खीचकर अपनी गोदमे बैठा लिया ।

इसके उपरान्त व्यासजीने बतलाया कि किस प्रकार उस मृगके बच्चेने धीरे धीरे करके उनकी टूटी हुई स्नेह-रूपी डोरीको फिरसे बाँधना आरम्भ किया, किस प्रकार उनकी सैकड़ों टुकड़ोंमे टूटी हुई माया-शृंखलाको उनके चारों ओर बाँधना आरम्भ किया, किस प्रकार वह उनके नित्य कर्म, पूजा पाठ, और यहाँ तक कि ईश्वर-चिन्तनमे भी आकर अंश ले जाने लगा । ध्यानके समय वे मानसिक दृष्टिसे देखते थे कि वह निराश्रय पशु सजल करुणदृष्टिसे हमारी ओर देख रहा है । इसके उपरान्त वह बड़ा होने लगा । धीरे धीरे वह कुटी छोड़कर आँगनमें, आँगन छोड़कर पुष्प-काननमे, उसके उपरान्त जंगलमें और फिर जंग-

लके दूर दूरके मार्गोंमें मनमाने ढगसे घूमने फिरने लगा। जब उसके वापस आनेका समय हो जाता और वह न आता तब राजा भरत उत्कण्ठित तथा चिन्तित हो जाते और जोरसे पुकारते—आओ! आओ! आओ! इसके उपरान्त व्यासजीने स्वय रोते हुए और श्रोताओंको रुलाते हुए बतलाया कि किस प्रकार एक दिन वह उनके सारे जीवनका मायाबन्धन दम भरमें तोड़कर चला गया। जगलका पशु जंगलमें चला गया। उसने मनुष्यकी व्यथा नहीं समझी। वृद्ध भरतने जोरसे पुकारा—आओ! आओ! आओ! पर कोई न आया, किसीने उस आकुल आह्वानका उत्तर नहीं दिया। तब उन्होने सारे जंगलमे ढूँढ डाला। एक एक कन्दरामें, एक एक वृक्षके नीचे, एक एक लता वितानमें रो रोकर पुकारा—आओ! आओ! आओ! पर कोई न आया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन बीत गए, पर कोई न आया। पहले उनका खाना पीना और सोना बन्द हुआ। उसके बाद पूजा पाठ बन्द हुआ, फिर चिन्ता ध्यान सब बन्द हो गया। वे उस निरुद्देश्य स्नेहास्पदके पीछे पीछे जंगली रास्तोंमें घूमने लगे।

व्यासजीने कहा—मृत्युकी काली छाया भूमि पर पड़े हुए भरतके अगोंपर अधिकार कर रही है। गला रुँध गया है, तापित तृषित होठ धीरे धीरे काँप उठते हैं। मानों इस समय भी बुला रहे हैं—आओ! आओ! आओ!

कैलासचन्द्रने विश्वेश्वरको जोरसे छातीसे लगा लिया और वे रोने लगे। उनके अन्तरका अन्तर मानों कॉप उठा और रो रोकर पुकारने लगा—आओ! आओ! आओ!

वृद्ध कैलासचन्द्रका यह रोना उस भरी सभामे किसीको भी अस्वाभाविक नहीं जान पड़ा, क्योंकि सभी लोगोंका कुछ न कुछ खो गया

था। सभी लोगोंका हृदय रोकर पुकार रहा था—आओ! आओ! आओ!

कैलासचन्द्रने आँसू पोंछते हुए विश्वेश्वरको गोदमे उठा लिया और कहा—चलो बेटा, घर चले। बहुत रात हो गई।

विश्वेश्वर गोदमें चढ़कर घर चल। बहुत देर तक एक जगह बैठे बैठे उसे नींद आ रही थी। वह रास्तेमें ही सो गया।

घर पहुँचकर कैलासचन्द्रने उसे सरयूके सामने गोदसे उतारते हुए कहा—लो बेटी, अपनी अमानत अपने पास रक्खो।

सरयूने देखा कि आज वृद्धकी आँखें बहुत भारी हो रही हैं।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

इन दो बरसोंमें चन्द्रनाथका अपने घरके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं था। हाँ जब उन्हें रुपयोंकी आवश्यकता होती थी, तब वे अपने गुमाश्तेको पत्र लिख भेजते थे और गुमाश्ताजी उनके लिखे हुए पते पर रुपए भेज देते थे।

हरकाली बीच बीचमें दुःखी होकर पत्र लिखा करती थी। ब्रजकिशोर भी पत्र द्वारा उनसे लौट आनेका अनुरोध करते थे। मणिशंकरने भी उन्हें एक दो पत्रोंमें लिखा था कि हमारी शारीरिक अवस्था धीरे धीरे खराब हो रही है; इसलिए हम एक बार तुम्हें देखना चाहते हैं।

पहले तो चन्द्रनाथ इस प्रकारकी बातों पर कोई ध्यान नहीं देते थे; पर जब हरिबालाने उनको लिखा कि यदि अवकाश मिले तो तुम एक बार यहाँ आओ, मैं तुमसे कुछ बात करना चाहती हूँ, तब चन्द्रनाथ बोरिया बँधना बाँधकर गाड़ी पर सवार हो गए।

हरिबाला यदि कुछ कहे, यदि कोई पत्र, कोई हस्तलिपि दिखलावे तो? यदि उसमे विगत सुखका कोई आभास मिले, तो फिर? कुछ नहीं। तो भी चन्द्रनाथ यही चाहते थे कि जिस प्रकार हो, मैं जल्दीसे घर पहुँच जाऊँ। परन्तु जिस आशा पर वे इतना बड़ा रास्ता तै करके आए थे, घर आने पर वह कुछ भी पूरी नहीं हुई। जब हरिबालासे उनकी भेंट हुई, तब उन्होने पूछा—कहो बहन, और क्या कहनेको थीं?

हरि०—बस, और कुछ नहीं।

निराश होकर चन्द्रनाथने कहा—तो फिर क्यों व्यर्थ मुझे इतना कष्ट देकर यहाँ तक बुला मँगाया?

हरि०—तुम्हारा घर न आना क्या कोई अच्छी बात थी ?

इसके उपरान्त हरिब लाने फिर ठण्ढी साँस लेते हुए कहा—भइया, जो कुछ होना था, वह तो हो गया। यदि अब तुम फिर गृहस्थी नहीं बनाओगे, तो मुझे बहुत अधिक दु:ख होगा।

चन्द्रनाथने विरक्त भावसे मुँह फेरकर कहा—तो फिर मैं क्या करूँ!

पर मणिशकर किसी प्रकार छोड़ते ही न थे। उन्होंने चन्द्रनाथका हाथ पकड़कर कहा—बेटा, तुम मुझे क्षमा करो। उस दिनसे मैं जैसी आगमें जल रहा हूँ, उसे केवल अन्तर्यामी ही जानते है।

चन्द्रनाथ बहुत ही दु:खी हुए, पर वे कुछ भी न कह सके।

मणिशकर फिर कहने लगे—अब तुम दूसरा विवाह करके सासारिक धर्मका पालन करो। मैने तुम्हारे मनके मुताबिक एक कन्या ढूँढ़ रखी है। केवल तुम्हारा अभिप्राय जाननेके लिए ही मैने अभी तक कोई जबान नहीं दी है। क्या जब एक स्त्री मर जाती है, तब लोग दूसरा विवाह नहीं करते ?

चन्द्रनाथने धीरे धीरे कहा—पहले यह समाचार मिल ले कि पहली स्त्री मर गई है, तब फिर देखा जायगा।

मणि०—शिव! शिव! बेटा, ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिए।

चन्द्रनाथ चुप रह गए।

मणिशकर हठात् रो पड़े और बोले—मै तो यही समझता हूँ कि मैने ही तुम्हारी स्त्रीको तुमसे अलग कराया है। यदि मै मर भी जाऊँगा, तो भी इस बातका दु:ख दूर न होगा।

चन्द्रनाथने बहुत देर तक सोचकर पूछा—आखिर आपने कहाँ सम्बन्ध स्थिर किया है ?

मणिशंकर आँसू पोंछकर उठ बैठे। उन्होंने कहा—कलकत्तेमें। यदि तुम स्वयं एक बार जाकर देख आओ, तो फिर सब ठीक हो जाय।

चन्द्र०—तो फिर मैं कल ही जाऊँगा।

मणिशंकरने आशीर्वाद देते हुए कहा—हाँ, ऐसा ही करो। यदि तुम्हें पसन्द हो तो मुझे पत्र लिखना। मैं घरके सब लोगोंको लेकर तुरन्त कलकत्ते आ जाऊँगा।

थोड़ी देर ठहरकर मणिशंकरने फिर कहा—बेटा चन्द्रनाथ, अब मैं बहुत दिनों तक नहीं जीऊँगा। पर हाँ, यदि मैं देख लूँगा कि तुम फिरसे विवाह करके सुखी हो गए हो, तो मैं बहुत आनन्दसे मर सकूँगा।

दूसरे दिन चन्द्रनाथ कलकत्ते जा पहुँचे। साथमें उनके मामा व्रज-किशोर भी थे। जब कन्याको देख चुके, तब व्रजकिशोरने कहा—लड़की तो देखनेमें बिलकुल लक्ष्मी जान पड़ती है।

चन्द्रनाथने मुँह फेर लिया। अपना कोई मत प्रकट नहीं किया।

फिर स्टेशन आकर टिकट लेकर दोनों आदमी गाड़ी पर सवार हुए। व्रजकिशोरने पूछा—क्यों बेटा, पसन्द तो है न?

चन्द्रनाथने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

व्रजकिशोर मानो आकाशसे नीचे गिर पड़े। उन्होंने कहा—ऐसी सुन्दर लड़की भी तुम्हें पसन्द न आई?

चन्द्रनाथने फिर सिर हिलाकर कहा—नहीं।

व्रजकिशोर मन ही मन सोचने लगे कि मैंने सरयूको नहीं देखा था।

जब निर्दिष्ट स्टेशन पर गाड़ी ठहरी, तब व्रजकिशोर उतर पड़े। चन्द्रनाथने इलाहाबादका टिकट लिया था।

व्रजकिशोरने पूछा—तब फिर तुम कितने दिनोंमें लौटोगे?

चन्द्रनाथने कहा—चाचाजीसे प्रणाम कह दीजिएगा। मेरी जल्दी लौटनेकी इच्छा नहीं है।

जब मणिशंकरने ये सब बातें सुनीं, तब माथा ठोंककर कहा—अब जो होगा, वह देखा जायगा। जहाँ मेरा शरीर कुछ अच्छा हुआ, मैं आप ही जाकर काशीसे बहूको ले आऊँगा। व्यर्थ समाजका भय करके मुझसे चिरकाल तक नरक न भोगा जायगा। और फिर समाज ही कौन है? हम स्वयं ही तो समाज हैं।

जब हरकालीने यह समाचार सुना, तब उसने दाँत पीसकर कहा—यह बूढा मरनेको लगा है, इसी लिए अब इसे बाई चढी है।

हरकालीने गुमाश्तेको बुलाकर पूछा—चन्द्रनाथने क्या कहा?

सर०—उन्होंने केवल यही पूछा था कि आज तक कितना रुपया काशी भेजा गया है?

हर०—बस! खाली यही पूछा, और कुछ भी नहीं पूछा?

हरकाली चली गई। उस समय उसके मुखका भाव बहुत ही भीषण हो गया था।

सोलहवाँ परिच्छेद ।

चन्द्रनाथने लिया तो इलाहाबादका टिकट था, पर रास्तेमें ही उन्होंने अकस्मात् अपना सकल्प बदल दिया और वे काशी जा पहुँचे ।

चन्द्रनाथके साथ जो दो नौकर थे, वे किराएकी घोड़ागाड़ी ठीक करके और उसपर असबाब आदि रखकर बैठ गए । पर चन्द्रनाथ उस गाड़ीपर नहीं बैठे । उन्होंने नौकरोको आज्ञा दी कि तुम लोग डाक बँगलेमें चलकर ठहरो और वहीं मेरी प्रतीक्षा करो । और वे स्वय पैदल ही एक दूसरे मार्गसे कहीं और चल पड़े । रास्तेमे चलते समय उन्हें बहुत क्लेश जान पड़ता था । उनका मुँह सूखा हुआ था, चेहरेका रंग उतरा हुआ था और जब वे कदम बढाते थे, तब उन्हें ऐसा जान पड़ता था कि मानों उनका हर एक कदम स्वय उन्हींकी छाती पर पड़ रहा है । तो भी वे किसी प्रकार चलते ही गए, रुके नहीं । धीरे धीरे हरिदयालके घरकी दूरी कम होती जाती थी । इन सभी रास्तोंसे वे विशेष परिचित थे । गलीक मोड़ पर उनकी पहचानी हुई वही छोटी दूकान ज्योकी त्यों थी । उस दूकानका मालिक ठीक उतनी ही बड़ी तोंद लिए हुए मोड़ पर बैठा हुआ पकौड़ियाँ बना रहा था । चन्द्रनाथ जरा खड़े हो गए । दूकानदारने उनकी ओर देखा, पर साहब लोगोंकी पोशाक पहने हुए आदमीसे वह पकौड़ी खरीदनेका अनुरोध न कर सका । वह उनकी ओर एक बार केवल देखकर ही फिर अपना काम करने लगा ।

चन्द्रनाथ आगे चले; पर मोड़ घूमनेके उपरान्त उनका पैर किसी प्रकार आगे बढ़ता ही न था। काशीकी उस सँकरी गलीमे मानों नामको भी हवा नहीं थी। उन्हें साँस तक लेनेमें क्लेश हो रहा था। वे दो एक कदम चलते थे और फिर खडे हो जाते थे। फिर चलते थे, फिर रुक जाते थे। रास्ता किसी प्रकार समाप्त ही न होता था। तथापि मनमें वे यही चाहते थे कि किसी प्रकार यह रास्ता समाप्त न हो। वे सोचते थे कि जब यह रास्ता समाप्त हो जायगा, तब आगे चलकर ईश्वर जाने क्या देखनेको मिलेगा और क्या नहीं देखनेको मिलेगा। थोड़ी देरमें वे चलकर हरिदयालके मकानके सामने जा पहुँचे और वहीं खड़ हो गये। बहुत देर तक खडे रहे। उन्होंने पुकारना चाहा, पर उनका गला सूख रहा था। उन्होने रुके हुए स्वर और टूटे हुए शब्दमें पुकारा, और पुकारकर वे फिर रुक गए। उन्होंने घड़ी निकालकर देखी। नौ बज चुके थे। फिर साहस करके पुकारा प० हरिदयालजी! पर कोई उत्तर न मिला। जो लोग रास्तेसे चले जा रहे थे, वे चन्द्रनाथको बढ़िया साहबी पोशाकमें देखकर कुछ चकित होते थे और बार बार उलट कर देखते थे। चन्द्रनाथने फिर पुकारा—हरिदयालजी!

अन्दरसे किसी स्त्रीने उत्तर दिया—घरमें नहीं हैं।

जिसने उत्तर दिया था, वह एक बगालिन दासी थी।

थोड़ी देरमें वह दासी बाहर द्वार तक आई, पर चन्द्रनाथको साहबी पोशाकमें देखकर दरवाजेकी आड़में छिप गई। पर जब उसने उन्हें भी स्वय अपनी ही मातृभाषामें बातें करते सुना, तब वह भयभीत होकर भागी नहीं। उसने आड़मेंसे ही कहा—वे घरमें नहीं है।

चन्द्र०—कब तक आवेंगे?

दा०—दोपहर तक।

चन्द्रनाथ मकानके अन्दर चले गए। आनन्द, लज्जा और शंका तीनोंके समिश्रणसे उनका कलेजा अन्दरसे काँप उठा। वे समझते थे कि अन्दर सरयू है। परन्तु अन्दर पहुँचने पर उन्हे वहाँ कोई दिखाई न दिया। उन्होंने उस दासीसे पूछा—क्या इस घरमें और कोई नहीं है?

दा०—नहीं।

चन्द्र०—वे लोग कहाँ है?

दा०—कौन लोग?

चन्द्र०—एक स्त्री—

दा०—यहाँ तो मेरे सिवा और कोई नहीं रहता।

चन्द्र०—एक छोटा लड़का था न?

दा०—नही, यहाँ तो कोई नहीं है।

चन्द्रनाथने पीढ़ेपर बैठकर कहा—तो फिर वे लोग कहाँ गए?

दासी कुछ चकित हुई। उसने कहा—जी नहीं, यहाँ तो कोई नहीं रहता। पण्डाजी रहते है और मै रहती हूँ। इधर तो एक महीनेसे यहाँ कोई यजमान भी नहीं आया।

चन्द्रनाथ स्तब्ध होकर जमीनकी ओर देखते रहे। उनके मनमे जो बाते उठ रही थीं, उन्हे अन्तर्यामी ही जानते थे। बहुत देरके बाद उन्होंने फिर पूछा—तुम यहाँ कितने दिनोसे हो?

दा०—कोई डेढ बरससे।

चन्द्र०—तो भी तुमने यहाँ किसीको नहीं देखा? एक गोरी स्त्री थी और उसकी गोदमें एक छोटा लड़का या लड़की थी, या खाली वह स्त्री ही हो। क्या तुमने किसीको नहीं देखा?

दा०—जी नहीं, मैंने तो किसीको नहीं देखा।

चन्द्र०—तुमने किसीसे उन लोगोंका कोई जिक्र भी नहीं सुना?

दा०—जी नहीं।

इसके उपरान्त चन्द्रनाथने फिर और कोई बात नहीं पूछी। वे चुपचाप बैठकर हरिदयालके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था कि अब सरयू इस संसारमें नहीं है। तथापि वे यह बात अपने कानोंसे सुन लेना चाहते थे और इसी लिए वहाँ बैठे हुए थे, पर वहाँ एक एक मिनट उन्हें एक एक बरसके समान जान पड़ता था।

दोपहरके बाद हरिदयाल घर आए। पहले तो चन्द्रनाथको देखकर वे कुछ चकित हुए, पर फिर पहचानकर शुष्क स्वरमे बोले—चन्द्र बाबू, आप हैं! कहिए, कब आए?

चन्द्रनाथने भग्न कण्ठसे कहा—बहुत देर हुई। वे लोग कहाँ है?

हरि०—वे लोग—हाँ,—वे लोग—

चन्द्रनाथ बहुत ही कठिनतासे उठकर खड़े हुए। प्राणपणसे जोर लगाते हुए उन्होंने अपने आपको सँभाला और पूछा—वह कब मरी?

हरि०—कौन कब मरी?

चन्द्रनाथने शुष्क और भग्न कण्ठसे चिल्लाकर पूछा—सरयू कब मरी?

हरिदयालने अब उनकी बात समझी। उन्होंने कहा—वह मरी नहीं, अच्छी तरह है।

चन्द०—कहाँ है?

हरि०—कैलास चाचाके घरमें।

चन्द्र०—वे कहाँ रहते है?

हरि०—इसी गलीमें। जहाँ यह गली समाप्त होती है, वहीं कट-हलके पेड़के नीचे उनका मकान है।

चन्द्रनाथ सिर पकड़पर फिर बैठ गए। बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहनेके उपरान्त उन्होंने शान्त भावसे पूछा—वह यहाँ क्यों नहीं है?

हरिदयालने मनमें सोचा कि मैंने कोई बुरा काम तो किया ही नहीं है। व्यर्थ लज्जित होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने साहस करके कहा—आप जिसे अपने घरमें जगह न दे सके, उसे मैं अपने घरमें कैसे रख सकता था? मुझे भी तो चार आदमियोंसे काम पड़ता है!

चन्द्रनाथने अपने मनमें समझ लिया कि हरिदयालका कहना बहुत ठीक है। उन्होंने कुछ सोचकर पूछा—वह कैलास चाचाके घरमें कैसे गई?

हरि०—वे उसे स्वय ही ले गए थे।

चन्द्र०—वे कौन है?

हरि०—यहीं काशीके रहनेवाले एक दुखी ब्राह्मण हैं।

चन्द्र०—सरयू उन्हें पहलेसे जानती थी?

हरि०—हॉ, बहुत अच्छी तरह जानती थी।

चन्द्र०—उनकी अवस्था कितनी है?

हरिदयालने मन ही मन कुछ हँसते हुए कहा—मै समझता हूँ कि यही साठ बरसकी होगी। वे सरयूको लड़कीके समान मानते और रखते है।

चन्द्र०—वहाँ और कौन रहता है?

हरि०—एक दासी है, सरयू है और विशु है।

चन्द्र०—विशु कौन?

हरि०—सरयूका लड़का।

चन्द्रनाथ उठकर खड़े हो गए और बोले—अच्छा तो मै अब चलता हूँ।

हरिदयालने उन्हें नहीं रोका और वे धीरे धीरे बाहर निकल आए। जहाँ गली समाप्त होती थी, वहाँ पहुँचकर उन्होने एक आदमीसे पूछा—आप जानते हैं, कैलास चाचा किस मकानमें रहते हैं?

उस आदमीने उँगलीसे एक मकानकी ओर संकेत किया । चन्द्रनाथको सामने और कोई तो दिखाई नहीं दिया, हाँ, बरामदेमें एक हृष्ट पुष्ट और सुन्दर छोटा बालक एक थालीमे जल लिए हुए अपना सारा शरीर उससे भिगो रहा था और बीच बीचमे बड़े आनन्द और सन्तोषसे देख रहा था कि थालीमें पड़नेवाली छाया किस प्रकार रह रहकर काँप रही है और हँस हँसकर उपहास कर रही है । चन्द्रनाथने चट उस बालकको गोदमें उठा लिया और घरमें प्रवेश किया । उस बालकने आश्चर्य या भयका कोई चिह्न प्रकट नहीं किया । देखनेमें ऐसा जान पड़ता था कि किसी अपरिचितकी गोदमें जाना उसके लिए कोई नई बात नहीं है । उसने चन्द्रनाथकी नाक पर अपना छोटासा कोमल हाथ रखकर पूछा—तुम कौन ?

चन्द्रनाथने बहुत स्नेहसे उसका मुँह चूमकर कहा—हम बाबूजी हैं।

विशु०—बाबूजी ?

चन्द्र०—हाँ, बाबूजी । तुम बताओ कौन हो ?

विशु०—मैं बिचू ।

चन्द्रनाथने अपनी घड़ी और चेन उतारकर उसके गलेमें पहना दी, और जेबमेंसे चाकू, पेन्सिल, मनीबेग जो कुछ था, सब निकालकर उसके हाथोंमें दे दिया । अब ढूँढ़ने पर उन्हें अपने पास कोई ऐसी चीज नहीं मिलती थी जो वे अपने पुत्रके हाथमें दे सकते ।

बहुतसी चीजे एक साथ ही हाथमें पाकर विशु पुलकित होकर बोला—बाबूजी !

चन्द्रनाथने उसका छोटा सा मुँह अपने मुँहसे मिलाकर कहा—बेटा !

इतनेमें लखियाकी माँने आफत मचा दी । उसने एकाएक खिड़कीमेंसे देखा कि एक साहब बहादुर घरमें घुस आए हैं और विशुके

गोदमें लिए हुए इधर उधर घूम रहे हैं। वह साँस रोककर रसोईघरमें दौड़ी गई। घरमें कैलासचन्द्र नहीं थे। बहुत दिनो बाद वे आज विश्वनाथजीके दर्शन करने गए थे। अभी थोड़ी देर पहले सरयू दर्शन करके आई थी और रसोईघरमें जाकर रसोई बना रही थी। लखियाकी माँने वहाँ पहुँचकर हाँपते हुए कहा—माँजी!

सर०—क्या है रे?

लखियाकी माँने उसी प्रकार हाँपते हुए कहा—घरमें एक साहब आया है और वह विशुको गोदमें लेकर घूम रहा है।

सरयूने चकित होकर पूछा—वह कौन है?

सरयू आप ही उठकर द्वार पर आई। वहाँसे उसने देखना चाहा, पर उसे कोई दिखाई नहीं दिया।

लखियाकी माँने उसका आँचल पकड़कर खींचते हुए कहा—अरे तुम उधर मत जाना। बाबूजीको आ लेने दो।

सरयूने उसकी बात नहीं मानी, उसे उसपर विश्वास ही नहीं हुआ। उसने कुछ और आगे बढ़कर देखा कि लखियाकी माँने जो कुछ कहा था, वह झूठ नहीं है। उसने देखा कि साहबकी पोशाक पहने हुए एक आदमी घूम रहा है और अस्फुट स्वरमें विश्वेश्वरसे कुछ बातें करता जाता है। वह साहस करके खिड़कीके पास पहुँची। वह जिसे केवल छाया देखकर ही पहचान जाती थी, उसे आज आँखोंके सामने देखकर क्यों न पहचानती? उसने जान लिया कि ये मेरे स्वामी—चन्द्रनाथ हैं।

सरयू चट उनके पास जा पहुँची और गलेमें आँचल डालकर उनके पैरोंपर सिर रखकर प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हो गई।

चन्द्रनाथने कहा—सरयू!

सत्रहवाँ परिच्छेद।

अब स्वामी और स्त्रीमे बातें होने लगीं।

चन्द्रनाथने कहा—बहुत दुबली हो गई हो।

सरयू उनके मुँहकी ओर देखकर कुछ मुस्कराई। वह कहना चाहती थी कि इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है। अब फिर चन्द्रनाथ विशुके फेरमे पड़ गए। सरयूने उनके जूतेका फीता खोला, एक एक करके उनके शरीर परसे कोट, कमीज आदि उतारी, उन्हे पंखा झला, और अँगोछा भिगोकर उनके पैर पोंछे। ये सब काम उसने ऐसे नियमित रूपसे किए, मानों ये सब उसके नित्यकर्म थे, वह रोज ही ये सब काम किया करती थी। इस जीवनमें जिनके दर्शनोंकी उसे कभी आशा ही नहीं थी, आज वे अकस्मात् इतने दिनोके उपरान्त आप ही आ पहुँचे थे। यह न जाने कितने आँसू बहानेकी, कितनी लम्बी साँसें लेनेकी बात थी। पर इनमेंसे कुछ भी न हुआ। सरयूने ऐसा भाव प्रकट किया कि उसके स्वामी मानों नित्य ही इस प्रकार आया करते हैं। आज भी उसी प्रकार आए हैं। यदि बहुत कहा जाय तो आज कुछ देर करके आए हैं, कुछ अधिक समय बिताकर आए हैं। बस, इसके सिवा और कुछ भी नहीं।

परन्तु चन्द्रनाथका व्यवहार कुछ और ही प्रकारका जान पड़ता था। वे विशुके साथ ही बहुत अधिक बातें करते थे, मानों घरमें और कोई है ही नहीं। उस विशुके साथ ही उनकी बहुत अधिक घनिष्ठता जान पड़ती थी। उस छोटीसी कोठरीमें क्षुद्र-बुद्धि विश्वेश्वरके सिवा और

कोई नहीं था । यदि कोई होता भी तो वह यही समझता कि चन्द्रनाथ बिना बुलाए आप ही यहाँ आए हैं, और इस बातको छिपानेके लिए ही वे मुँह फेरकर अपने पुत्रके साथ बातें करनेमें ही उलझे हुए है ।

सरयूने कहा—जाओ बेटा, खेलो ।

विशु खाट परसे नीचे उतरा पड़ता था । चन्द्रनाथने बड़े यत्नसे उसे नीचे उतार दिया । इससे पहले उसने अपनी माँको प्रणाम करते हुए देखा था, इस लिए वह भी उतरकर पिताके चरणोंमें उसी प्रकार झुककर प्रणाम करके वहाँसे भागा । चन्द्रनाथने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ना चाहा, पर इतनेमें ही वह दौड़कर उनकी पहुँचके बाहर निकल गया था ।

सरयूने अपने कलेजे पर हाथ रखकर कहा—तुम्हारे शरीरमें कुछ भी दम नहीं जान पड़ता । क्या तुम बीमार थे ?

चन्द्र०—नहीं, बीमार तो नहीं था ।

सर०—तो क्या बहुत अधिक चिन्ता किया करते थे ?

चन्द्रनाथने उसके मुँहकी ओर देखते हुए कहा—तुम क्या समझती हो ?

सरयूने उनकी उस बातका कोई उत्तर नहीं दिया । दूसरी बात छेड़ दी । कहा—समय अधिक हो गया । चलो, स्नान कर लो।

चन्द्रनाथने पूछा—घरके मालिक कहाँ हैं ?

सर०—वे आज विश्वनाथजीके मन्दिरमें पूजा करने गए हैं । मालूम होता है, अब वे सन्ध्याके बाद आवेंगे ।

चन्द्र०—तुम उन्हें क्या कहकर पुकारती हो ?

सर०—मैं उन्हें हमेशा तायाजी कहकर पुकारा करती थी, वही अब भी पुकारती हूँ ।

चन्द्रनाथने फिर और कुछ न पूछा ।

सरयूने पूछा—तुम्हारे साथ कौन आया है ?

चन्द्र०—दोनों नौकर हरि और मधु आए हैं । वे लोग डाकबँग-लेमें ठहरे हुए है ।

सर०—शायद उन्हे अपने साथ यहाँ लानेका तुम्हें साहस नहीं हुआ ?

चन्द्रनाथने इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया ।

जब चन्द्रनाथ भोजन करने बैठे, तब उन्हें अपने आगे पूरियोंकी थाली देखकर आश्चर्य हुआ । उन्होंने अप्रसन्नतापूर्वक थाली अपने आगेसे खिसका दी और कहा—यह क्या है ? तुम तकल्लुफ करके नए सिरसे घनिष्ठता स्थापित करन   हती हो या हँसी कर रही हो !

सरयू कुछ अप्रतिभ सी हो गई । उसने मलिनमुखसे कहा—क्यों, क्या नहीं खाओगे ?

चन्द्रनाथने थोड़ी देर तक सरयूके मुखकी ओर देखकर कहा—मैं कभी दोपहरके समय पूरी खाता हूँ ?

सरयू मन ही मन दु खी होकर चुप रह गई ।

चन्द्रनाथने कहा—यह बात तो है नहीं कि तुम आज मुझे पहले पहल खिलाने बैठी हो । मै समझता हूँ कि शायद तुम यह भी भूल गई हो कि मै क्या खाया करता हूँ ।

सरयूकी आँखोंमे जल भरा आता था । वह सोच रही थी कि अब वे दिन बीत गए—बहुत दूर निकल गए । उसने कहा—भात खा-ओगे ? पर—

चन्द्र०—पर क्या ? क्या सूख गया है ?

सर०—नहीं सूखा तो नहीं है। मैं यहाँ नित्य पकाती हूँ।

चन्द्र०—घर पर भी तो पकाया करती थीं?

सरयूने कुछ रुककर कहा—तुम मेरे हाथका भात खाओगे?

चन्द्रनाथने सिर झुका लिया। अभी तक वे यह नहीं समझे थे कि सरयू दूसरी हो गई है अथवा उसका छूआ हुआ अन्न खाया नहीं जा सकता। लेकिन सरयूकी उस बातमें एक प्रकारकी बहुत बड़ी ज्वाला थी। वे पहले तो बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहे, पर फिर उन्होंने धीरे धीरे कहना आरम्भ किया—सरयू, क्या जब तक तुम इस दो पहरके समय मेरी आँखोंमें जल न देख लोगी, तब तक तुम्हारी तृप्ति न होगी?

सरयू चटपट उठ खड़ी हुई और बोली—अच्छा तो मैं अभी ले आती हूँ।

इतना कहकर वह रसोई घरमें चली गई। वहाँ जाकर वह बहुत रोई। फिर उसने आँसू पोंछे और पानीसे मुँह धोया। पर आँसुओंका तार टूटता ही न था। वह रह रहकर आँसू पोछती थी और अपने आपको किसी प्रकार सँभाल ही नहीं सकती थी। परन्तु यह सोचकर कि स्वामी भूखे बैठे हुए है, वह थाल लेकर फिर उनके सामने आई। बहुत दिनों पहले वह जिस प्रकार उनके पास बैठकर यत्नपूर्वक भोजन कराया करती थी, आज भी वह ठीक उसी प्रकार उन्हे भोजन कराने लगी; और जब वे भोजन कर चुके, तब जूठा थाल हाथमे लेकर फिर एक बार अच्छी तरह रोनेके लिए रसोईघरमें चली गई।

उस समय दो बज चुके थे। चन्द्रनाथकी छातीके आगे विश्वेश्वर बड़े मजेमें सोया हुआ था। इतनेमें सरयू वहाँ आ पहुँची।

चन्द्रनाथने पूछा—सब काम धन्धा हो गया?

सर०—काम तो कोई ऐसा था ही नहीं । हाँ, तायाजी अभी तक नहीं आए ।

इसके उपरान्त सरयूने घर गृहस्थीकी बात छेड़ी । अपने घरकी एक एक कोठरी, एक एक चीज, मामी, दास, दासी, गुमाश्ताजी, सखी हरिबाला, पास पड़ोसके और जितने लोग थे, उन सबका हाल पूछा । इतनी देर तक दोनोंमेंसे किसीकी समझमें भी यह बात न आई कि सरयूको इन सब बातोंके जाननेसे कोई लाभ नहीं है, अथवा ये सब बातें बतलानेमें चन्द्रनाथको भी कष्ट होना चाहिए—उन्हें कुछ लज्जा, कुछ विमर्ष, कुछ सकोच होना चाहिए । सरयू परम आनन्दसे प्रश्न करती जाती थी और चन्द्रनाथ बड़े उत्साहसे उत्तर देते जाते थे । यही जान पड़ता था कि दोनों बहुत ही घनिष्ठ मित्र हैं; अलग हो गए थे, अब फिर मिले है ।

सहसा सरयूने पूछा—तुमने अपना ब्याह कहाँ किया है ?

मानों यह बहुत ही साधारण और हँसीकी बात थी ।

चन्द्रनाथने कहा—पश्चिममें ।

सर०—बहू कैसी आई है ?

चन्द्र०—तुम्हारे जैसी ।

इस समय सरयून अपने हृदयमें एक प्रकारके कष्टका अनुभव किया । वह अपने आपको सँभाल न सकी । बैठी हुई थी, लेट गई । उसके चेहरेका रग एक दमसे उतर गया ।

चन्द्रनाथ घबराकर पलग परसे नीचे उतर पड़े और उसके पास पहुँचकर हाथ पकड़कर उसे उठानेकी चेष्टा करने लगे । परन्तु सरयू बिलकुल शिथिल और बेसुध हो गई थी । चन्द्रनाथ उसके सिरके पास

बैठ गए और उसका सिर अपनी गोदमे लेकर रोते हुए पुकारने लगे—सरयू ! सरयू !

सरयूने आँखें खोलीं और क्षणभर तक स्वामीकी ओर देखकर फिर आँखें बन्द कर लीं। उसके होंठ काँप उठे और न जाने अस्पष्ट स्वरमें उसने क्या कहा।

चन्द्रनाथ बहुत ही भयभीत हो गए। उन्होंने दासीको पुकारकर पानी लानेके लिए कहा। लखियाकी माँ पास ही थी। वह तुरन्त पानी लेकर आ पहुँची, पर उसने किसी प्रकारकी घबराहट नहीं प्रकट की। उसने कहा—बाबूजी, अभी थोड़ी देरमें सब ठीक हो जायगा। इन्हें बीच बीचमें ऐसा ही हुआ करता है।

सरयूके मुँह और आँखोपर पानी छिड़का गया, पखा झला गया और विशुने आकर उसके सिरके दो एक बाल पकड़कर खीचते हुए पुकारा—माँ ! माँ !

अब सरयूको होश आ गया। वह लज्जित होकर सिर परका कपड़ा सँभालती हुई उठ बैठी। लखियाकी माँ फिर अपना काम धन्धा करने चली गई। उस समय मारे भयके चन्द्रनाथके चेहरे पर स्याही दौड़ गई थी।

सरयू हँस पड़ी। उसने बहुत ही क्षीण और बहुत ही मधुर रूपसे हँसकर कहा—क्यो, क्या तुम डर गए थे ?

चन्द्रनाथकी आँखें डबडबा आई थीं। अब उनमेसे आँसू बह चले। उन्होंने हाथसे अपने आँसू पोंछते हुए कहा—मैने तो समझा था कि बस अन्त हो गया।

सरयूने मन ही मन सोचा कि तुम्हारी गोदमें मेरा सिर था, भला इस अभागिनीके भाग्यमें ऐसी अच्छी बात कब बदी थी ! उसने प्रकट रूपसे कहा—मुझे बीच बीचमें ऐसा ही हो जाया करता है।

चन्द्रनाथने कहा—हाँ, यह तो मै भी देख रहा हूँ । पहले तुम्हें यह बात नहीं होती थी, पर अब होने लग गई है ।

इसके उपरान्त बहुत देर तक चन्द्रनाथ चुपचाप बैठे रहे । फिर उन्होने अपने जेबसे मोरचा लगा हुआ तालियोका एक गुच्छा निकाला और सरयूके ऑचलमे बॉधकर कहा—लो, यह तुम्हारा चाबियोंका गुच्छा है । तुम इसे मेरे सपुर्द करके चली आई थीं । आज मैंने तुम्हे लौटा दिया । इसे अच्छी तरह देख लो । इसे देखनेसे क्या तुम्हें मालूम होता है कि यह कभी काममे आया है ?

सरयूने देखा कि जो चाबियोंका गुच्छा उसे बहुत प्रिय था, वह मोरचा लगनेके कारण बिल्कुल मैला हो गया है । उसने गुच्छा हाथमें लेकर कहा—तुमने यह गुच्छा बहूको क्यों नहीं दिया ?

चन्द्रनाथके सुर्ख और मलिन मुखपर सहसा अकृत्रिम हँसी आ गई और उनकी दोनों ऑखे मारे असीम स्नेहके चचल हो उठीं । तो भी उन्होंने अपने आपको सॅभालकर कहा—उसीको तो दिया है !

सरयूकी समझमें यह बात अच्छी तरह नहीं आई । थोड़ी देर तक स्वामीके मुखकी ओर सन्दिग्ध दृष्टिसे देखनेके उपरान्त उसने कोमल स्वरसे कहा—मै नई बहूकी बात कह रही हूँ । तुम्हारी जो दूसरी स्त्री ब्याह कर आई है, उसे तुमने यह गुच्छा नहीं दिया ?

अब चन्द्रनाथ अपने आपको न सँभाल सके । उन्होंने सहसा दोनों हाथ बढ़ाकर सरयूका मुख खींचकर अपनी छातीसे लगा लिया और कहा—सरयू, उसीको तो दिया है । मेरी दो स्त्रियाँ नहीं हैं, एक ही है । पर मेरी वह स्त्री कभी पुरानी नहीं होती, सदा नई ही रहती है । पहले जब मैं उसे इस काशीसे विश्वनाथजीकी प्रसादी फूलकी भाँति अपने कलेजे पर रखकर ले गया था, उस दिन भी वह नई ही थी;

आर आज फिर जब मैं विश्वनाथजीके चरणोंमेंसे उसे उठा ले जानेके लिए आया हूँ, तब भी वह उसी प्रकार नई ही है।

सन्ध्या समय दीपक जलाकर और लड़केको गोदमे लेकर सरयू अपने स्वामीके चरणोंके पास आ बैठी और बोली—बिना तायाजीसे भेंट किए हुए तुम यहाँसे नहीं जा सकते। आज रातको तुम्हें यहीं रहना होगा।

चन्द्रनाथने कहा—मैं भी कुछ ऐसे ही लक्षण देख रहा हूँ। जान पड़ता है, आज मै यहाँसे नहीं जा सकूँगा।

सरयू बहुत देरसे एक बात कहना चाहती थी, परन्तु लज्जाके कारण कह नहीं सकती थी। वह बात कहनेके लिए उसे अभी तक समय भी नहीं मिला था। अब उसने कहा—अब तुमसे काहेकी लज्जा—

चन्द्रनाथ उस समय सरयूके मुँहकी ओर देखते हुए चुप रहे। सरयूने कहा—मैने सोचा था कि मै तुम्हें एक चिट्ठी लिखूँ।

चन्द्र०—तुम लिख भेजतीं। मैने तो तुम्हें कभी मना नहीं किया।

सरयूने कुछ सोचकर कहा—मुझे डर लगता था कि कहीं तुम नाराज न हो जाओ। अब फिर तुम कब आओगे?

चन्द्र०—जब तुम कहोगी, तब आऊँगा।

सरयूने पहले तो मनमें सोचा कि उसी समय वह बात कह दूँगी पर तुरन्त ही उसने फिर सोचा कि मनुष्यके शरीरका कोई ठिकाना नहीं। उसने यह भी सोचा कि यदि मैं अभी नहीं कहती हूँ, तो फिर यह बात रह ही जायगी। सम्भव है, चन्द्रनाथ फिर आवें, पर साथ ही यह भी सम्भव है कि उनके आनेके समय तक मेरा शरीर जलकर राख हो जाय और वह राख कहाँकी कहा

उड़ जाय। यही सोचकर उसने फिर कहा—तुम्हारे सामने मुझे कोई लज्जा नहीं है।

चन्द्र०—यह तो मैं सुन चुका। अब आगे और भी कुछ कहोगी या नहीं?

सरयूने कुछ देर तक रुककर कहा—अब मैं जीना नहीं चाहती। इस तरहसे जीना अब मुझे अच्छा नहीं लगता।

चन्द्रनाथने सोचा कि यह बात हँसीकी नहीं जान पड़ती। उन्होंने अच्छी तरह देखा, सरयूके चेहरेका रंग फीका पड़ गया था। उन्होंने भयभीत होकर पूछा—सरयू, तुम्हे कोई भारी रोग तो नहीं लगा है न?

सरयूने म्लान हँसी हँसकर कहा—यह तो मैं नहीं कह सकती, पर हाँ, बीच बीचमे मेरे कलेजेमें बहुत दरद हुआ करता है।

चन्द्रनाथने पूछा—और यह मूर्च्छा?

सर०—नहीं, यह तो कोई बात ही नहीं है।

चन्द्रनाथने मन ही मन सोचा कि अब तक तो जो कुछ होना था, वह हो गया। अब मै अपना सर्वस्व लगाकर भी तुम्हें अच्छा करूँगा।

सरयूने कहा—मैं तुमसे एक भिक्षा माँगती हूँ। दोगे?

चन्द्र०—क्या चाहती हो?

सर०—मै अपने लिए कुछ भी नहीं चाहती। बस यही चाहती हूँ कि जिस समय तुम मेरी मृत्युका समाचार सुनो, उस समय—

इतना कहकर सरयूने लड़केको चन्द्रनाथके पैरोंके पास बैठा दिया और फिर कहा—उस समय तुम एक बार यहाँ आकर इस लड़केको ले जाना—

चन्द्रनाथने बड़े आवेगसे विश्वेश्वरको गोदमें उठाकर उसका मुँह चूम लिया।

इतनेमें ही बाहरसे कैलासचन्द्रने पुकारा—बेटा विशु !

विश्वेश्वर चट पिताकी गोदमेंसे उतर पड़ा और दौड़ता हुआ बोला—दादाजी, आए।

सरयूने कहा—लो, वे भी आ गए।

थोड़ी ही देर बाद कैलासचन्द्र गोदमें विश्वेश्वरको लिए हुए आँगनमें आ खड़े हुए। उन्होने पहले कभी चन्द्रनाथको नहीं देखा था। यदि देखा भी होता, तो शायद पहचान न सकते, इस लिए वे उनकी ओर केवल देखते रह गए। लड़केने परिचय करा दिया। उसने कहा—ये बाबूजी है।

चन्द्रनाथ उस समय कैलासचन्द्रको प्रणाम करके खड़े हो गए। कैलासचन्द्रने उन्हे आशीर्वाद देते हुए कहा—बैठो बेटा, बैठो।

अठारहवाँ परिच्छेद ।

परन्तु जब चन्द्रनाथने वृद्ध कैलासचन्द्रसे कहा कि कल मैं इन लोगोंको अपने साथ ले जाऊँगा, उस समय कैलासचन्द्रके कलेजेमें मानो सैकड़ो तोपोंके एक साथ छूटनेका शब्द हुआ । उन्होंने स्वय ही जो कुछ कहा, उसका शब्द भी उनके कानो तक न पहुँचा । परन्तु चन्द्रनाथके सुननेमे यह आया कि अस्फुट स्वरमे रोते हुए बहुत दूरसे किसीने कहा—इससे बढ़कर और कौनसी बात हो सकती है !

सरयूने भी यह सुनकर प्रसन्नता नहीं प्रकट की । उसकी दोनों आँखोंसे आँसू बहने लगे । उसने स्वामीके चरणों पर सिर रखकर कहा—अपने पैरोंकी धूल देकर इस हतभागिनीको यहीं रहने दो । मुझे अपने साथ न ले जाओ ।

चन्द्रनाथने पूछा—क्यों ?

सरयू कोई उत्तर न दे सकी । वह रो पड़ी । रह रहकर उसकी आँखोंके सामने वृद्ध कैलासचन्द्रका कातर मुख नाचने लगा ।

चन्द्रनाथने कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त कहा—मैं तुम्हारा स्वामी हूँ । यदि मैं तुम्हे ले जाना चाहूँ, तो फिर तुम्हारी इच्छा न होने पर भी कुछ न हो सकेगा । मै विशुको छोड़कर नहीं रह सकता ।

सरयूने देखा कि अब मेरे बोलनेकी कोई जगह ही नहीं है ।

दूसरे दिन सबेरेसे ही कैलासचन्द्रने नित्यकी भाँति विश्वेश्वरको अपनी गोदमें ले लिया और शतरंजकी पोटली हाथमे लेकर वे शम्भू मिश्रके घर जा पहुँचे । उन्हे पुकारकर कैलासचन्द्रने कहा—मिसिरजी, आज मेरे लिए बहुत ही आनन्दका दिन है । आज विशु अपने घर

जायगा । अब यह बड़ा हो गया है, इसी लिए मै इसे अपने छोटेसे घरमे नहीं रख सकता ।

मिसिरजीने भी इस पर प्रसन्नता प्रकट की ।

कैलासचन्द्रने शतरज बिछाकर और उसपर मोहरे सजाकर कहा—आओ, जरा मेरे सामने बैठो । आज तुम्हें दो बाजी मात करूँगा ।

परन्तु खेल आरम्भ होते ही एक एक करके कैलासचन्द्रके सब मोहरे मारे जाने लगे । जब हाथी चलना चाहते थे, तब ऊँट चल बैठते थे, और जब ऊँट चलना चाहते थे, तब हाथी चल बैठते थे । इस प्रकार उनके खेलमे बहुत गडबडी होने लगी । मिसिरजीने कहा—आज आपका मिजाज ठिकाने नहीं है, इसीसे आप बहुत गलत चाल चल रहे है ।

एक बाजी हार चुकनेके बाद कलासचन्द्र और एक बाजी हार गए और तब खेल समाप्त करके शतरजकी पोटली बाँधने लगे, पर लाल वजीर उन्होंने नहीं बाँधा । वह वजीर उन्होंने शिशुके हाथमें देकर कहा—लो बेटा, यह वजीर मै तुमको देता हूँ । अब मैं तुमसे यह कभी न माँगूँगा । रास्तेमें आते समय उन्हें जो मिलता था, उसे वे यह खुश खबरी सुना देते थे ।

वृद्ध कैलासचन्द्र आज सभी कामोमें बहुत अधिक उत्साह दिखला रहे है । पर काम करते करते भी सब काम पिछड़ जाते हैं । शतरजके खेलकी तरह और सब कामोंमें भी बहुत भूल हो रही है । ज्यो ज्यों दिन ढलने लगा, त्यों त्यो भूलें और भी बढने लगीं । उनकी ये भूलें देखकर सरयूको सैकड़ों बार अपनी आँखोके आँसू पोछने पड़े । पर फिर भी वृद्धके चेहरे पर जो उत्साह था, वह कम नहीं हुआ । यहाँ तक कि जब सरयू उन्हें आड़में बुलाकर उनके चरणोंकी धूलि सिर पर चढ़ाकर रोने लगी, तब भी वे आँसू रोककर हँसते हुए आशी-

र्वाद देने लगे और बोले—नहीं बेटी, तुम रोओ मत। इस बूढ़ेके आशीर्वादसे तुम रानी होगी। अब फिर यदि कभी तुम काशी आना, तो इस कुटियाको भूलकर और कहीं न जा ठहरना।

सरयू और भी अधिक रोने लगी। उसके मनमें रह रहकर उसी दिनकी बात याद आती थी, जिस दिन वह निराश्रिता और भिखारिणी हो कर काशीमें आई थी। और आज!

सरयूने कहा—तायाजी, जब म चली जाऊँगी, तब तुमसे रहा नहीं जायगा। तुम—

कैलासचन्द्रने कहा—बेटी, अब मुझे जीना ही और कितने दिन है! पर मन ही मन उन्होंने सोचा कि अब तो मेरी बुलाहट ही है। इतने दिनों बाद अब कहीं तप्त प्राणोंके शीतल होनेका उपाय हुआ है।

सरयूने आँसू पोंछते हुए आकुल भावसे कहा—मेरी दया माया नहीं—

कैलासचन्द्रने कहा—नहीं बेटी, ऐसी बात मत कहो। मैंने तुम्हें अच्छी तरह पहचान लिया है।

रातको दस बजे सब लोग स्टेशन जा पहुँचे। गाड़ीका समय धीरे धीरे पास आने लगा।

विश्वेश्वर सो गया था, पर लाल वजीर वह उस समय भी अपनी छातीसे लगाए हुए था। वृद्ध कैलासचन्द्रने उसे जैसे तैसे जगा ही लिया। तुरन्त सोकर उठनेके कारण वह रोने लगा, पर जब कैलासचन्द्रने उसके मुँहके पास अपना मुँह ले जाकर कहा—बेटा, विशु! तब वह हँस पड़ा और बोला दादाजी!

कैलास०—अरे मेरे बेटा, तुम कहाँ जा रहे हो?

विशुने कहा—दाते है। फिर वह लाल वजीर दिखलाकर कहा—बर्जील!

कैलासचन्द्रने कहा—देखो बेटा, यह वजीर कहीं खो न देना।

हाथीदाँतके बने हुए इस लाल वजीरके लिए कैलासचन्द्रने विशुको कई बार सतर्क कर दिया था। उसने भी सिर हिलाकर कहा—नई दादाजी!

जब गाड़ी आई, तब सरयूने फिर कैलासचन्द्रके चरणोंकी धूल माथे पर लगाई और तब वह गाड़ी पर सवार हुई। वृद्धका आन्तरिक आशीर्वाद काँपते हुए होठोंसे बाहर ही न निकला, अन्दर ही रह गया।

जब कैलासचन्द्रने देखा कि अब गाड़ी छूटनेमे अधिक विलम्ब नहीं है, तब उन्होने विश्वेश्वरको चन्द्रनाथकी गोदमें दे दिया और विशुसे कहा—बेटा विशु!

विशुने भी उसी प्रकार कहा—हाँ दादाजी!

कैलास०—वजीर!

विशुने वह वजीर देखकर हँसते हुए कहा—हाँ दादाजी, बजील।

कैलास०—देखो बेटा, इसे खोना नहीं।

विशु०—नई दादाजी।

अब वृद्धकी सूखी हुई आँखोंमे आँसू भर आए। जब गाड़ी चलने लगी, तब उन्होने खिड़कीमे मुँह डालकर सरयूसे कहा—अच्छा तो बेटी, अब मै जाता हूँ। और फिर एक बार जोरसे पुकारा—बेटा विशु!

पर गाड़ीकी गड़गड़ाहट और लोगोंके शोर गुलमे विश्वेश्वर उनका वह पुकारना नहीं सुन सका। जब तक गाड़ीका कुछ भी शब्द सुनाई पड़ता था, तब तक कैलासचन्द्र अपनी जगहसे एक कदम भी नहीं हटे। उसके बाद फिर वे धीरे धीरे घरकी ओर चले।

उन्नीसवाँ परिच्छेद ।

चन्द्रनाथको जो कुछ थोड़ा बहुत भय था, घर पहुँचते ही चाचा-मणिशकरकी बातोसे वह सब भय जाता रहा। उन्होंने कहा—बेटा, प्रायश्चित्त तो पापके लिए होता है। बहूने कोई पाप तो किया ही नहीं है, तब फिर उसे प्रायश्चित्त करनेकी क्या आवश्यकता है? जब उसने कोई पाप ही नहीं किया है, तब व्यर्थ प्रायश्चित्तकी बात छेडकर तुम लोग उसकी अवमानना मत करो।

मणिशकरके मुँहसे यह बिलकुल नई बात निकली थी। चन्द्रनाथ आश्चर्यभरी दृष्टिसे उनकी ओर देखते रह गए। मणिशकरने फिर कहा—मै तो यही देखता देखता बुड्ढा हो गया हूँ। कुछ न कुछ दोष, कुछ न कुछ लज्जाकी बात हर एक घरमें है। मनुष्यको अपने दीर्घ जीवनमें बहुत अधिक चलना पड़ता है। इस विस्तृत मार्गमे कहीं कीचड होता है और कहीं फिसलन होती है। कहीं ऊँचा नीचा भी होता है। इसी लिए लोगोका पैर फिसल जाता है, पर इस ससारमे कोई अपनी बात नहीं कहता। सब लोग दूसरोकी ही बाते कहते है। लोग जो दूसरोके दोप, दूसरोंकी लज्जाकी बात चिल्लाकर कहा करते है, वह केवल अपने दोषको छिपानेके लिए कहते हैं। वे यह समझते है कि दूसरोंके झगड़े बखेड़ेमे हमारी लज्जाकी बात दब जायगी।

मणिशकरकी ये सब बातें चन्द्रनाथ चुपचाप सुनते रहे। मणिशकरने कुछ ठहरकर फिर कहना आरम्भ किया—मैने तो अब एक नई बात सीखी है। मैने यह सीखा है कि पराएको अपना भी किया जा सकता है और पराया भी किया जा सकता है। पर जो अपन

है, उसे कब कोई पराया कर सका है ? इतने दिनों तक मैं अन्धा था। पर विशुने आज मेरी आँखे खोल दी है। उसके पुण्यसे सब पवित्र हो गया है। आज द्वादशी है। पूर्णिमावाले दिनके लिए मैंने सारे गाँवको तुम्हारे यहाँ भोजन करनेका निमन्त्रण दे दिया है। पहले भइया थे, सब काम काम काज वही करते थे। मै तो आज तक कुछ कर ही न सका, इस लिए मै अब सोचता हूँ कि विशुका फिरसे अन्नप्राशन कर दिया जाय।

चन्द्रनाथने कुछ सोचकर कहा—परन्तु समाज ?

मणिशकरने हँसते हुए कहा—समाज हम है, समाज तुम हो। यहाँ और कोई नहीं है। जिसके पास धन है, वही समाजपति है। यदि हम चाहे तो तुम्हारी जाति बिगाड सकते है, और यदि तुम चाहो तो हमारी जाति बिगाड़ सकते हो। तुम समाजके लिए चिन्ता मत करो। मैने आज तक तुमसे एक बात नहीं कही थी, पर आज कहता हूँ। शायद मै तुमसे यह बात कभी न कहता, पर अब मै सोचता हूँ कि यदि मै तुम पर यह बात प्रकट कर दूँगा, तो कोई हानि न होगी। तुम्हे राखालदास भट्टाचार्यकी बात याद है ?

चन्द्र०—हाँ, हरिदयालके पत्रमे मैने उसका हाल पढा था।

मणि०—यदि हमारे परिवारमे लज्जाकी कोई बात थी, तो उसे केवल वही प्रमाणित कर सकता था। पर अब वह कोई बात किसी पर प्रकट नहीं कर सकता। मैने उसे जेल भिजवा दिया है। अभी हालमें ही वह जेलसे छूटकर न जाने कहाँ चला गया है और अब वह कभी इधर आनेका नाम भी न लेगा।

इसके उपरान्त मणिशकरने राखालका आदिसे अन्त तक सब हाल चन्द्रनाथको कह सुनाया। सब बातें सुनकर चन्द्रनाथकी आँखें भर आईं।

इसके उपरान्त पूर्णिमाके दिन सब लोगोंका खाना पीना हुआ। गॉव भरमे किसीने कोई बात नहीं कही। मणिशंकरका व्यवहार देखकर सब लोगोको यही विश्वास हो गया कि झूट मूठ एक अपवाद उठा था। शायद वह भी जमींदारीकी एक चाल थी।

हरकालीने अपना भोजन अलग पकाकर खाया था। अब वे लोग इस गॉवमे नहीं रहेंगे, अपने घर जायँगे। हरकालीने कहा—प्राण चले जायँ, सो मजूर है, पर मै अपना धर्म किसी प्रकार नहीं छोड़ सकती।

चाहे यह बात सुखकी हो और चाहे दु:खकी हो, चन्द्रनाथने उन लोगोके लिए पचाससे सौ रुपया महीना कर दिया।

जब उत्सव समाप्त हो गया और नाच गाना बन्द हो गया, तब बहुत रात बीते चन्द्रनाथने घर आकर देखा कि सिरसे पैरो तक अलङ्कारोसे लदी हुई राजराजेश्वरीके समान सरयू गोदमें सोए हुए पुत्रको लिए हुए जाग रही है और स्वामीके आनेकी प्रतीक्षामे बैठी है।

आज पूर्णिमा थी।

चन्द्रनाथने कहा—है!

सरयूने मुस्कराकर कहा—सखीने आज किसी तरह न छोड़ा।

बीसवाँ परिच्छेद।

रातके समय धीरे धीरे पैर बढाते हुए वृद्ध कैलासचन्द्र अपने घर आ पहुँचे। तुलसीकी चौरी पर अभी तक दीपक जल रहा था, तो भी उन्हे चारो ओर भीषण अन्धकार दिखाई देता था। अभी तक तो यहाँ सभी लोग थे, पर अब कोई नहीं था। वही मिट्टीका दीया अभी तक जल रहा था, पर अब उसकी आयु भी पूरी हो चली थी। अब वह बिलकुल बुझनेको ही था। सरयू यह दीया अपने हाथसे जलाकर गई थी।

कैलासचन्द्र आकर पलग पर सो गए। अवसन्न नेत्रोमें तन्द्रा आने लगी। पर फिर भी बीच बीचमे उन्हे ऐसा जान पडता था कि कोई पुकार रहा है—"दादाजी!" उन्होंने स्वप्नमें देखा कि मानों राजा भरत उनकी छातीपर मृत्युशय्या बिछाकर अपने क्षीण होठ कँपाकर कह रहे है—"आओ! लौट आओ! लौट आओ!"

सवेरा होने पर कैलासचन्द्र पलग परसे उठ बैठे और बाहर आते ही उन्होंने अपने सदाके अभ्यासके अनुसार पुकारा—"विशु!" फिर पीछेसे उन्हे याद आया कि विशु यहाँ नहीं है, अपने घर चला गया है!

हाथमें शतरजकी पोटली लेकर वे शम्भू मिश्रके मकानकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होने मिश्रजीको पुकारकर कहा—मिसिरजी, हमारा बेटा विशु चला गया।

विशुसे सभी लोग प्रेम करते थे। मिश्रजी भी दुःखित हुए। जब बिसात बिछाई गई और उस पर सब मोहरे रख दिए गए, तब मिश्रजीने पूछा—वह लाल वजीर क्या हुआ?

कैलासचन्द्रने लम्बी साँस लेकर कहा—हाँ मिसिरजी, वह वजीर वही विशु लेता गया है। वह लाल वजीरको बहुत चाहता था। लड़का था, किसी तरह मानता ही नहीं था।

कैलासचन्द्रको यह कहनेमें लज्जा होती थी कि मैंने अपनी इच्छासे ही वह वजीर विशुको देकर अपने मोहरे खण्डित किए हैं।

मिसिरजीने पूछा—तो फिर दूसरे मोहरे निकालें ?

कैलास०—निकालो।

खेलमें कैलासचन्द्र हार गए। शम्भू मिश्र उनके साथ बहुत दिनोंसे खेला करते थे, पर कभी उन्हे हरा नहीं सकते थे। आज कैलासचन्द्रके हारनेका कारण वे सहजमे ही समझ गए। उन्होंने कहा—वह विशु तुम्हारा सारा इल्म अपने साथ लेता गया।

कैलासचन्द्रके होठो पर सूखी हँसीकी रेखा दिखाई दी। उन्होंने कहा—आओ, जरा और एक बाजी खेल देखे।

मिश्र—अच्छी बात है।

खेलके बीचमे कैलासचन्द्र किश्त देकर बोल उठे—विशु !

शम्भू मिश्र हँस पड़े। उन्होने कहा—यहाँ तो किश्त है, विशु कहाँ है ?

दोनो आदमी हँस पड़े।

शम्भू मिश्रने किश्त देकर कहा—लो, अबकी तुम्हारे दो प्यादे गए।

कैलासचन्द्रने घबराकर कहा—आओ, आओ, बेटा, जल्दी आओ।

इसके उपरान्त वे कुछ देर तक प्रतीक्षामे बैठे रहे। वे मनमे समझते थे कि बस अब एक क्षुद्र कोमल शरीर हमारी पीठ पर आकर गिरना चाहता है। शम्भू मिश्रने उन्हें कुछ विलम्ब करते देखकर कहा—अबकी प्यादा नहीं बचा सकोगे।

वृद्ध कैलासचन्द्र चौंक उठे। उन्होंने कहा—देखो, दो मोहरे मारे गए!

इसके उपरान्त खेल समाप्त हुआ। मिश्रजी जीत तो गए, पर आनन्दित नहीं हुए। उन्होंने बिसात और मोहरे आदि हटाकर कहा—अब दूसरे दिन खेल होगा। आज आपकी तबीयत ठीक नहीं है। मिजाज ठिकाने नहीं है।

कैलासचन्द्रको घर लौटनेमें दोपहरका समय हो गया। वे सोचते थे कि विशु तो है ही नहीं, फिर व्यर्थ जल्दी क्यों की जाय।

घर पहुँचकर उन्होंने देखा कि लखियाकी माँ रसोई घरमें अकेली बैठी हुई है और रसोईका इन्तजाम कर रही है। आज उन्हे अपने हाथसे रसोई पकानी पडेगी, अपने हाथसे थाली परोसनी पड़ेगी और अकेले ही बैठकर भोजन करना पडेगा। अब जब जैसे जी चाहेगा, तब वैसे भोजन करेंगे, कोई जल्दी तो है ही नहीं और न विश्वेश्वरकी शरारतका ही डर है। बहुत ही स्वाधीन है। पर ये सब बातें उन्हें अच्छी नहीं लग रही है। उन्होने रसोईघरमें पहुँचकर देखा एक मुट्ठी चावल है, दो तीन आलू है, दो परवल है, थोड़ीसी दाल है। उनकी आँखोंमे जल भर आया। आजसे दो बरस पहलेकी बाते याद आ गई। उस समय भी इसी प्रकार केवल अपने लिए आप ही भोजन बनाना पडता था। यही लखियाकी माँ रसोईका सब आयोजन कर दिया करती थी। पर हाँ, इतना अवश्य था कि उस समय तक न तो विशु आया ही था और न आकर चला ही गया था।

कटहलके पेड़के नीचे विश्वेश्वरके खेलनेके लिए जो छोटा सा मकान बनाया गया था, वह अभी तक ज्योंका त्यों था। उसमें टूटी हुई दो हँड़ियाँ, हाथ पैर टूटी हुई मिट्टीकी एक पुतली और दो पैसेवाली एक टूटी हुई वशी पड़ी थी। वृद्ध कैलासचन्द्र उन सब चीजोको लड़-कोंकी भाँति उठा लाए और लाकर अपने सोनेके कमरेमें रख दिया।

अब फिर वे दोपहरके समय गंगा पॉड़ेके यहाँ शतरज बिछाकर बैठने लगे। सन्ध्याके बाद फिर मुकुन्द घोषकी बैठकमे लोगोंका जमा-वड़ा होने लगा। पर कैलासचन्द्र पहले जिस प्रकार बहुत प्रसिद्ध और और तेज खेलनेवाले माने जाते थे, अब वैसे नहीं माने जाते। पहले वे दिग्विजयी थे, पर अब उनके लिए केवल खेलना ही खेलना हाथ था। पहले जिन लोगोको वे हाथ पकड़कर खेलना सिखला चुके थे, आज वही उन्हे चाल बतलाते है। वे पहले जिनके साथ अपने सब मोहरे बचाकर भी खेल सकते थे, वही अब खूब तनकर और उनका एक हाथी मारकर खेल आरम्भ किया करते थे।

कैलासचन्द्रको अब भी पहलेकी ही भॉति खेलनेका शौक था, पर उनमे खेलनेकी सामर्थ्य नहीं रह गई थी। अब भी कभी कभी एक दो बहुत बढिया चाले याद आ जाती हैं, परन्तु सीधे सीधे खेलमे ही बहुत भूले हो जाती है। पहले वे बहुत अभिमानसे शतरंज खेला करते थे, पर अब वह अभिमान कोरी लज्जामे परिणत हो गया था। पर हॉ, शम्भू मिश्र अब भी उनका सम्मान करते थे। अब वे उनके प्रतिद्वन्द्वी होकर नहीं खेलते थे। आवश्यकता होने पर कोई कठिन समस्या पूरी कर दिया करते थे।

अब कैलासचन्द्रके घर पर भी बहुत गड़बड़ी होने लग गई है। लखियाकी मॉ फिर पहलेकी तरह बिगड़ने लगी है। दो एक दिन वह अपनी ऑखोंसे ऑसू पोछती हुई भी देखी गई है। वह कहा करती है कि बाबूजी, अब तो तुमने नहाना धोना और खाना पीना सभी कुछ एक दमसे छोड़ दिया है। जरा शीशा लेकर एक दफे अपना मुँह तो देखो!

इस पर कैलासचन्द्र मुस्कराकर कहा करते थे—अरे अब तो मै रसोई बनाना बिलकुल भूल ही गया हूँ। अब तो मुझसे आग भी नहीं सुलगाई जाती।

पर लखियाकी माँ कैलासचन्द्रकी बहुत पुरानी मजदूरनी थी। वह किसी प्रकार उन्हें छोड़ती ही न थी। बक झककर जैसे तैसे मुट्ठी दो मुट्ठी चावल उनसे पकवा ही लेती थी।

इसी प्रकार करते करते एक महीना बीत गया।

इसके उपरान्त एक बार तीन चार दिन तक किसीने कैलास चाचाको नहीं देखा। सबसे पहले शम्भू मिश्रका इस बात पर ध्यान गया। वे उन्हें देखनेके लिए आए। उन्होने आकर पुकारा—कैलास बाबू!

लखियाकी माँने उन्हे उत्तर दिया—बाबूजीको तो बुखार आता है।

मिश्रजी घरमे चले आए और आकर कैलासके बिछौनेके पास बैठते हुए बोले—कहिए बाबू, आपको बुखार आ गया?

कैलासचन्द्रने हँसते हुए कहा—हाँ महाराज, अब मेरी बुलाहट हो रही है, इसी लिए मैं धीरे धीरे चल रहा हूँ।

मिश्रजीने कहा—राम राम! आप ऐसी बातें कहते है। अरे दो चार दिनमें आप अच्छे हो जाँयगे।

कैलास०—अब यह उमर आराम होनेकी नहीं है। अबकी बार चल ही देना पड़ेगा।

मिश्र—वैद्यराजजीको बुलवाया था?

कैलासचन्द्रने फिर हँसते हुए कहा—भला इस अट्ठावन बरसकी उमरमें वैद्यराजजी आकर क्या करेंगे?

मिश्र—अट्ठावन बरसकी उमर भी कोई उमर होती है! लोग इससे बहुत ज्यादा तक जीते हैं।

कैलासचन्द्रने उनकी इस बातका कोई उत्तर न देते हुए सहसा कहा—अच्छी बात है। मिसिरजी, हमारे विशुने चिट्ठी लिखी है। लखियाकी माँ जरा खिड़की खोल दे, तो मिसरजीका चिट्ठी पढ़कर सुना दें।

इतना कहकर कैलासचन्द्रने तकिएके नीचेसे तक पत्र निकाला और बहुत कष्टसे मिश्रजीको आदिसे अन्त एक पढ़ सुनाया। पत्र बँगलामें था, और मिश्रजी हिन्दुस्तानी थे, इसलिए वे कुछ तो समझे और कुछ नहीं भी समझे।

रातको शम्भू मिश्र वैद्यराजको बुला लाए। वैद्यराज भी बगाली थे। कैलासचन्द्रको वे बहुत पहलेसे जानते थे। उनके दो एक प्रश्नोंका उत्तर देकर कैलासचन्द्रने कहा—वैद्यराजजी, मेरे बेटेने चिट्ठी लिखी है। मै पढता हूँ। आप जरा उसे भी सुन लीजिए।

कैलासचन्द्रके बेटेको वैद्यराजजी नहीं जानते थे। उन्होंने पूछा—यह किसकी चिट्ठी है?

कैलास०—हमारे बेटे विशुकी। लखियाकी मॉ, जरा दीया इधर लाना तो सही—

दीया आ गया और उसके प्रकाशमें उन्होंने सारा पत्र वैद्यराजजीको पढ सुनाया। उन्होने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि वैद्यराजजी हमारा पत्र सुन भी रहे है या नहीं। वह सरयूके हाथकी लिखी विशुकी चिट्ठी थी, कैलासचन्द्रके लिए यही सान्त्वना, यही सुखकी बात थी। वैद्यराजजी औषध देकर चले गए और शम्भू मिश्रको बुलाकर कैलासचन्द्र अपने विश्वेश्वरके रूप, गुण, बुद्धि और दूसरी समस्त बातोंकी आलोचना करने लगे।

इसी प्रकार दो सप्ताह बीत गए, पर कैलासचन्द्रका ज्वर कम नहीं हुआ। तब उन्होने महल्लेके एक लड़केको बुलवाकर अपने विशुको पत्र लिखवाया। उस पत्रका अभिप्राय यही था कि हम अच्छी तरह हैं, आज कल तबीयत कुछ ठीक नहीं है, पर फिर भी चिन्ताकी कोई बात नहीं है।

जब हरिदयालने सुना कि कैलास चाचाके बचनेकी अब कोई आशा नहीं है, तब वे भी उन्हे देखनेके लिए आए। इधर उधरकी दो एक

बाते करनेके उपरान्त कैलासचन्द्रने फिर तकिएके नीचेसे वही चिट्ठी निकाली और हरिदयालके हाथमें देकर कहा—लो भइया, जरा इसे पढ़ो तो सही।

वह चिट्ठी बहुत मैली हो गई थी। दो एक जगहसे कुछ फट भी गई थी। पूरी पूरी पढी नहीं जाती थी। जहाँ तक हो सका, हरिदयालने उसे पढा। पढकर कहा—यह तो सरयूके हाथकी लिखी हुई है।

कैलास०—हाँ, लिखी तो सरयूके ही हाथकी है, पर है मेरे बिशुकी चिट्ठी।

हरि०—हाँ, नीचे उसका नाम तो है।

पर हरिदयालकी इस बातसे वृद्ध कैलासचन्द्र सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होने कहा—उसीका नाम है, उसीकी चिट्ठी है। सरयू तो केवल लिखनेवाली है। जब बिशु लिखना सीख लेगा, तब आप ही मुझे चिट्ठी लिखा करेगा।

हरिदयालने सिर हिला दिया।

कैलासचन्द्र फिर बड़े उत्साहसे कहने लगे—क्यो भइया, पढ़ लिया न? हमारा बेटा रातको "दादाजी दादाजी" कहकर चिल्ला उठता है और रोने लगता है। वह क्या कभी हमें भूल सकता है?

इतना कहते कहते कैलासचन्द्रकी आँखोसे दो बूँद आँसू निकलकर गाल परसे होते हुए तकिए पर आ पड़े।

लखियाकी माँ पास ही बैठी थी। वह हरिदयालको संकेत करके बाहर बुला ले गई और बोली—पडाजी, अब आप जाइए। आप अगर रहेंगे, तो ये सारा दिन इसी तरहकी बाते करते रहेंगे।

और चार पाँच दिन बीत गए। कैलासचन्द्रकी हालत बहुत ही खराब हो गई थी। अब शम्भू मिश्र रात दिन कैलासचन्द्रके पास ही रहते है। बीच बीचमे वैद्यराजजी भी आकर देख जाया करते हैं।

आज दिन भर उन्हें होश नहीं था। सन्ध्याके बाद कुछ कुछ होश हुआ। इसके बाद कुछ तो होश था और कुछ बेहोशी थी। बस इसी अवस्थामें पड़े हुए थे। आधी रातके समय उन्होने कहा—बेटा विशु, हमारा वजीर दे दो। जल्दी दो, नहीं तो यह बाजी मात हो जायगी।

शम्भू मिश्रने उनके पास पहुँचकर पूछा—बाबूजी, आप क्या कह रहे हैं?

कैलासचन्द्रने एक बार मिश्रजीके चेहरेकी ओर देखा और घबराकर एक बार तकिएके नीचे हाथ डाला। ऐसा जान पड़ता था कि उनकी कोई चीज खो गई है, इस समय उसकी आवश्यकता है, पर ढूँढनेसे वह नहीं मिल रही है। इसके बाद उन्होने हताश होकर करवट बदलते हुए कहा—बेटा विशु, अब तो वजीर दे दो। बिना वजीरके मैं कब तक खेलूँगा?

इस विश्वरूपी शतरंजके खेलमें कैलासचन्द्रका वजीर खो गया था। वे मानों कातर भावसे विश्वपातिसे उसी वजीरकी भिक्षा मॉग रहे थे। शम्भू मिश्र उनके पास आ खड़े हुए थे। लखियाकी माँने उनके मुँहके पास दीया लाकर देखा, उनकी आँखे ऊपरकी ओर चढ़ी हुई थीं, केवल होठ अब भी कॉप रहे थे। उन होठोसे निकल रहा था—विश्वेश्वर, बिना वजीरके मै कब तक खेलूँगा। लाओ भाई, अब वजीर दे दो!

दूसरे दिन हरिदयालने चन्द्रनाथको पत्र लिख दिया कि कल रातको कैलासचन्द्रका स्वर्गवास हो गया।

समाप्त।